वर्ष : ७
अंक : ४९

संत श्री आसारामजी आश्रम
द्वारा प्रकाशित

जनवरी १९९७
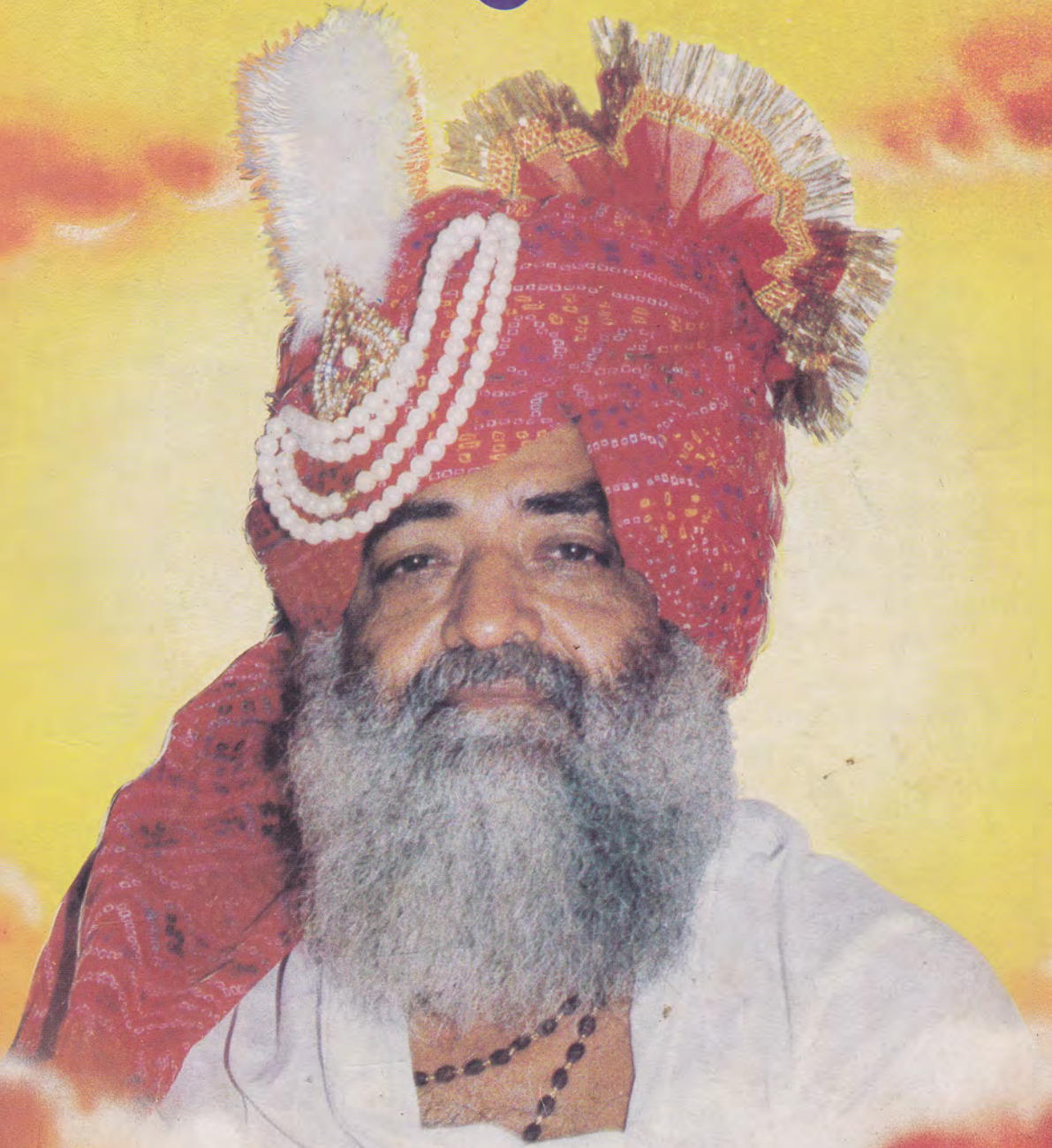
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ७
अंक : ४९
९ जनवरी १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५
फोन : (०७९) ७४८६३१०, ७४८६७०२.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५ ने
विनय प्रिन्टिंग प्रेस, मीठाखली, अहमदाबाद, पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अहमदाबाद में छपाकर प्रकाशित किया।

प्रस्तुत है...

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

प्रभु ! एक तू ही तू है

फरियाद क्या करूँ मैं
जब याद तू ही तू है ।
सर्वत्र तेरी सत्ता
हर दिल में तू ही तू है ॥
तुझसे महका उर आँगन
तुझसे ही झूमा चितवन ।
मेरी अंतर आत्मा की
ज्योति भी तू ही तू है ॥
तुझसे ही बहारें छाई
इन फिजाओं में रंग लाई ।
नजरों में नूर तेरा
हर नजाकत में तू ही तू है ॥
हर रूप में है छाई
तेरी छबि समाई ।
हर दिल की धड़कनों में
बसा एक तू ही तू है ॥
तेरा ही जलवा छाया
सबमें है तू समाया ।
लाली लहू में तेरी
इन रंगतों में तू ही तू है ॥
तेरा ही आसरा है
इक आस है तुम्हारी ।
इन मन के मंदिरों में
बसा एक तू ही तू है ॥
लागी लगन है जिसको
इक तेरे ही अगन की ।
उसकी हर अदा इबादत
कण कण में तू ही तू है ॥
तन के सितार में है
गुंजार तेरी दाता ।
स्वासों के साजों में भी
झंकार तू ही तू है ॥
मन वाणी से परे है
तू आत्मा हमारा ।
विश्वास की डगर पर
अहसास तू ही तू है ॥
हर दिल में तेरी दिलबर
झलक ही छा रही है ।
इन चंदा तारों में भी
प्रकाश तू ही तू है ॥
पर्दा हटा नजर से
निरखूँ स्वरूप प्यारा ।
महका चमन अमन का
चितवन में तू ही तू है ॥
'साक्षी' है साथ मेरे
है जुदा नहीं तू जानिब ।
बंध मोक्ष से परे है
निराकार तू ही तू है ॥
तू परम सखा है मेरा
दिले दरिया का किनारा ।
मेरी जीवन नैया का
माझी मल्लाह तू है ॥

-जानकी ए. चंदनानी

अहमदाबाद ।

शाश्वत स्थान की प्राप्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

'हे भारत ! तू सर्व भाव से उस परमेश्वर की ही शरण में जा । उसकी कृपा से तू परम शान्ति और शाश्वत् स्थान प्राप्त करेगा ।' (भगवद्‌गीता : १८.६२)

देह शाश्वत नहीं है अर्थात् सदा रहनेवाली नहीं है, देह से मिलनेवाली खुशियाँ शाश्वत नहीं हैं, देह को मिलनेवाले पद शाश्वत नहीं हैं लेकिन देह का जो आधार है, देह में रहनेवाला जो विदेही चैतन्य आत्मा है, वह शाश्वत है और वही परम शान्ति का धाम है ।

आज तक जिस किसीको ज्ञान मिला है, प्रेम मिला है, आनंद मिला है, निर्दोष सुख मिला है वह उस शाश्वत चैतन्य के भण्डार से ही मिला है । वही आत्मपद है, सबका असली स्वरूप है ।

आज तक जिस किसीको ज्ञान मिला है, प्रेम मिला है, आनंद मिला है, निर्दोष सुख मिला है वह उस शाश्वत चैतन्य के भण्डार से ही मिला है । वही आत्मपद है, सबका असली स्वरूप है । उस सोऽहम् स्वभाव की पवित्रता, शांति, समता, करुणा, प्रेम, आनंद आदि अनादि काल से निखरते आये हैं, निखर रहे हैं और निखरते ही रहेंगे । बुद्धिमानों की बुद्धि, सत्ताधीशों की सत्ता संभालने की कला, धनवानों की धन संभालने की और बढ़ाने की अक्ल, शूरवीरों का शौर्य, तेजस्वियों का तेज, सुन्दरियों का सौन्दर्य एवं सज्जनों की सज्जनता इसी शाश्वत् पिटारी से आती है, फिर भी जरा-सी भी कम नहीं होती है । वही शाश्वत् चैतन्य परमात्मा अपना आत्मारूप बनकर सदा हमारे साथ है । भगवान कहते हैं :

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: ।

'इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है ।'

हम जितने-जितने उस पूर्ण परमेश्वर में, अपनी आत्मा में तल्लीन होते जाएँगे, उतने-उतने पावन होते जाएँगे, निश्चिंत होते जाएँगे, आनंदित होते जाएँगे...

हम नाश होनेवाली देह को 'मैं' मानकर सदा रहनेवाले चैतन्य आत्मा की अवहेलना करते हैं, इसीलिए परेशानियों के पोटले सिर पर उठाने पड़ते हैं । जबकि उस परमेश्वर की शरण में जाने से आत्मस्वभाव में तल्लीन होने से परेशानियाँ दूर हो जाती हैं और परम शांति मिलती है, इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **तमेव शरणं गच्छ ।** 'उस परमात्मा की शरण में जा ।'

जो कुछ हो जाये उसमें उस परमात्मा की मर्जी मानो । 'मान देनेवाले में भी तू और अपमान करनेवाले में भी तू । मित्र में भी तू और शत्रु में भी तू । अनुकूल परिस्थिति देनेवाला भी तू और प्रतिकूलता पैदा करनेवाला भी तू । तन्दुरुस्ती में भी तू और रोग में भी तू...' इस प्रकार हर वक्त, हर जगह उस प्रियतम प्रभु को देखोगे तो कोई भी तुम्हें परेशान नहीं कर पायेगा । भेद बुद्धि से दिखाई देनेवाले अलग-अलग नाम-रूपों को सच्चा मानने से दु:ख, चिंता, अशांति, खिंचाव-तनाव व खूनखराबा होता है जबकि अभेद बुद्धि से 'सबमें एक ही परमेश्वर की सत्ता, स्फूर्ति, चेतना चमक रही है' ऐसा भाव रखकर व्यवहार करने से ओज-तेज, पवित्रता, आनंद और शांति बढ़ती है ।

जो उस परमेश्वर को पाने के लिये अर्थात् अपने

आत्मस्वरूप को जानने के लिये प्रयत्न करते हैं, जो अपनी उन्नति चाहते हैं । ऐसे साधकों की, भक्तों की तीन अवस्थाएँ होती हैं :

तस्यैवाहम् । मैं उसका हूँ ।

तवैवाहम् । मैं तेरा हूँ ।

त्वमेवाहम् । मैं तू ही हूँ ।

जैसे किसी लड़की की मँगनी होती है तब वह लड़की मानती है : 'मैं उसकी हूँ ।' जब नयी-नयी शादी होती है तब बोलती है : 'मैं तेरी हूँ ।' फिर पति के घर में रहने लगती है और पुरानी हो जाती है तब कोई आकर उसे पूछे :

''गोविंदभाई हैं ?''

''वे तो नहीं हैं लेकिन बात क्या है ?''

''मुझे एक चीज चाहिए थी ।''

''हाँ, हाँ, ले जाओ । मैं और वे एक ही तो हैं । इसमें क्या पूछना ?''

भक्त की स्थिति भी ऐसी है । 'मैं उसका हूँ' माने मँगनी हो गयी । 'मैं तेरा हूँ' माने शादी हो गयी । 'मैं और तू एक ही हैं' माना संबंध दृढ़ हो गया, पक्का काम हो गया । जीवात्मा-परमात्मा की शादी के ये लक्षण हैं ।

मँगनी के पहले तो लड़की पिता के घर को अपना मानती है । पति के घर का, ससुरालवालों के घर के संबंध का पता ही नहीं होता है । जब मँगनी होती है तब कहती है : 'उनका घर है, ससुरालवालों का घर है । फिर नयी-नयी शादी होती है तब 'मेरे पति का घर है' ऐसा मानती है । जब घर में रहते हुए पुरानी हो जाती है तब 'हमारा घर है' ऐसा कहने लगती है ।

भावो हि विद्यते देवो । जैसा भाव होता है वैसा दिखता है । भाव बदलते हैं तो वही की वही परिस्थिति बदली हुई मालूम पड़ती है । अपना अहंभाव बदल जाय, 'मैं' पना बदल जाय तो ममभाव-'मेरा'पना बदल जाता है । अहंता बदलने से ही ममता बदल जाती है । अपनी अहंता को ईश्वर में लगा दो तो 'मैं भगवान का हूँ' यह भाव जगेगा और भगवान में प्रीति हो जाएगी तब लगेगा 'भगवान मेरे हैं ।' दृढ़तापूर्वक भगवान से अपनापन मान लोगे तो हृदय में भक्ति की रसधारा बहने लगेगी ।

> *हम जितने-जितने उस पूर्ण परमेश्वर में, अपनी आत्मा में तल्लीन होते जाएँगे, उतने-उतने पावन होते जाएँगे, निश्चिंत होते जाएँगे, आनंदित होते जाएँगे...*

भक्ति की प्रारंभिक दशा में भक्त भगवान को अपने से कहीं दूर मानता है, वह परमेश्वर की चर्चा अन्य पुरुष में करता है : 'मैं उसका हूँ ।' **तस्यैवाहम्** ।

इस भाव का भी पूर्णरूप से अनुभव कर लिया जाय तो हृदय मधुरता से छलक जाएगा । 'मैं उसका हूँ तो मेरा जो कुछ है वह भी मेरे प्रभु का है... ।' ऐसा भक्त सुबह उठता है तबसे लेकर रात को सोने तक जो कुछ करता है उसको अपने प्रिय प्रभु का आदेश समझकर ही करता है । वह अपने घर, सगे-संबंधी, मित्र आदि को भी ईश्वर का समझता है या तो ईश्वर की कृपा से सब मिला है ऐसा मानता है । उससे उसे परम आनंद मिलता है ।

> *'सबमें एक ही परमेश्वर की सत्ता, स्फूर्ति, चेतना चमक रही है' ऐसा भाव रखकर व्यवहार करने से ओज-तेज, पवित्रता, आनंद और शांति बढ़ती है ।*

जब प्रारंभिक दशा से कुछ उन्नत होता है और ईश्वर से निकटता का अनुभव करता है, तब वह कहता है :'मैं तेरा हूँ ।' इस भाव से ईश्वर को अपने समीप मानता है । पहली दशा मधुर और प्यारी है किंतु यह दशा उससे भी प्यारी और रुचिकर है ।

जब भक्ति की पराकाष्ठा आती है, उन्नति की अंतिम अवस्था आती है तब वह ईश्वर को अपना स्वरूप जान लेता है । उस अवस्था में वह कहता है : **त्वमेवाहम्** । 'मैं तू ही हूँ ।' फिर वह भक्त और ईश्वर दो अलग नहीं रहते हैं । दोनों एक हो जाते हैं । ईश्वर का सच्चा प्रेमी ईश्वर में मिल जाता

है तो जान लेता है : 'मैं वह हूँ । मैं तू हूँ तू मैं है । तू और मैं एक ही हैं ।' यानि जीव-ब्रह्म की एकता का अनुभव हो जाता है । यही ज्ञान की उच्चतम अवस्था है । यही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है । जो बाहर-भीतर सच्चे हैं, वे शुद्ध बुद्धि से इस निश्चय पर पहुँच जाने के बाद निदिध्यासन द्वारा इस निश्चय का अनुभव कर लेते हैं, दिव्य आनंद को पा लेते हैं, वे स्वयं ब्रह्मरूप हो जाते हैं, वे इसी जीवन में मुक्त हो जाते हैं अतः जीवन्मुक्त कहलाते हैं ।

ऐसी जीवन्मुक्ति पाना ही हमारे जीवन का लक्ष्य होना चाहिये । देह को 'मैं' मानते रहोगे और देह के संबंधों को मेरा मानते रहोगे तो काम नहीं चलेगा । 'मैं गोविंदभाई... मैं मोहनभाई... ये मेरे बेटे-बेटियाँ... यह मेरी पत्नी... यह मेरी दुकान... यह मेरा मकान...' ऐसी बातों में उलझकर जीवन पूरा कर देनेवाले तो कई लोग इस संसार में आ-आकर चले गये ।

जो अपनी अहंता को शरीर और शरीर के संबंधों से हटाकर भगवान में लगा देता है, वह देर-सबेर भगवत्स्वरूप को उपलब्ध हो जाता है ।

आप भी अगर ज्ञान का विचार नहीं करोगे तो अपने सच्चे स्वरूप को नहीं पहचान पाओगे । जो अपनी अहंता को शरीर और शरीर के संबंधों से हटाकर भगवान में लगा देता है, वही देर-सबेर भगवत्स्वरूप को उपलब्ध हो जाता है ।

भाव बदलने से ही आधा काम बन जाता है । बाकी का काम ज्ञानसंयुक्त जीवन जीने से पूरा हो जाता है । भाव किसी साधन से नहीं बदलता है वरन् ज्ञान से बदलता है ।

जैसे, किसी बकरे के गले में फँदा पड़ा हो और आप उसे स्नानादि कराके उसके आगे धूप-दीप करो, पूजा करो, आरती उतारो, मेवा-मिठाई का प्रसाद रखो, फिर भी उससे बंधन नहीं कटेगा लेकिन फँदा कैसा है ? यह देखकर उसे काटने का उपाय सोचो और फँदा काट दो तब काम बनेगा ।

ऐसे ही जीवरूपी बकरे के गले में अज्ञान का जो फँदा पड़ा है उसे जरा समझ लो और सत्संग से, सेवा से, विवेक-वैराग्य से, विचाररूपी कैंची से काट दो तो मुक्त हो जाओगे । फिर चाहे प्रवृत्ति करो चाहे निवृत्ति लेकिन रहोगे निजानंद में । तब आपको किसीका भय नहीं रहेगा । फिर चाहे मौत भी आ जाए तो मौत के भी आप दृष्टा बन जाओगे, साक्षी बन जाओगे और मौत से पार हो जाओगे । यह मुक्तिपद है ही ऐसा कि जिसे पाकर फिर इस जन्म-मरण के चक्कर में वापस नहीं आना पड़ता ।

श्रीकृष्ण कहते हैं :

न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

'जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयंप्रकाश परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही, वही मेरा परमधाम है ।' (भगवद्गीता : १५.६)

परमात्मा के उस परमधाम को पाने के लिये श्रीकृष्ण कहते हैं : **तमेव शरणं गच्छ ।** तू सर्वभाव से उस परमात्मा की शरण में जा, जो अंतर्यामी आत्मा के रूप में सदा तेरे साथ है । जो अनन्य भाव से उसकी शरण में जाता है वह भी उसी रूप हो जाता है । उसे सबमें अपना-आपा नजर आता है ।

दुर्बल में भी 'मैं' और बलवान की गहराई में भी 'मैं'... शत्रु में भी 'मैं' और मित्र में भी 'मैं' ही नजर आया तो फिर अहंकार, राग-द्वेष, ईर्ष्या, भय आदि के लिए स्थान ही कहाँ बचेगा ?

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥

'जो पुरुष सबमें समभाव से स्थित परमेश्वर को समान देखता हुआ अपने द्वारा अपने को नष्ट नहीं करता, अर्थात् राग-द्वेष आदि विकारों के वश नहीं होता है इससे वह परमगति को प्राप्त होता है ।'

(भगवद्गीता : १३.२८)

❀

असीम ईश्वरीय सुख की प्राप्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

तन सुकाय पिंजर कियो धरे रैन दिन ध्यान ।
तुलसी मिटे न वासना बिना विचारे ज्ञान ॥

तप करना, तन को सुखाना, तितिक्षा सहना, इनसे परमात्मप्राप्ति नहीं होती । तप से शक्ति तो प्राप्त होती है और पुण्य से उत्कृष्ट भोग प्राप्त होते हैं किन्तु अमरत्व की, परमात्मप्रेम की प्राप्ति नहीं होती और जब तक परमात्मप्रेम की प्राप्ति नहीं होती तब तक मन स्थिर नहीं होता । इसलिये परमात्म-प्राप्ति की दिशा में मन की स्थिरता प्रमुख सोपान है ।

अपने दोष को खोजकर निकाले, उसका नाम संत है और दूसरों पर दोष आरोपित करे वह साधारण जीव है ।

देवर्षि नारद गये सनकादि ऋषियों के पास और उनसे प्रार्थना करते हुए बोले :

''हे भगवन् ! लोगों की नजर में तो मैं बहुत बड़ा साधु हूँ, तीनों लोकों में मेरी अबाध गति है, 'नारायण-नारायण...' करते हुए कहीं भी पहुँच जाता हूँ लेकिन जहाँ जाना चाहिए, जिसे पाना चाहिए, जिसे पाकर फिर हर्ष-शोक नहीं होता उस परमात्मप्रेम का, उस मुक्ति का अनुभव नहीं हो रहा है । सामान्य आदमी को तो तीन ताप सताते हैं किन्तु मुझे तो चार ताप सता रहे हैं ।''

सारी आकृतियाँ जहाँ से प्रकट होती हैं, जिसकी सत्ता से बोलती हैं और जिसमें विलय हो जाती हैं, उस भूमा ईश्वर को जानोगे, तब पूर्ण सुखी हो जाओगे ।

अपने दोष को खोजकर निकाले, उसका नाम संत है और दूसरों पर दोष आरोपित करे वह साधारण जीव है ।

देवर्षि नारद आगे कहते हैं : ''हे ऋषिवर ! सामान्य आदमी को तो आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक ये तीन ताप सताते हैं किन्तु मुझे तो चार ताप सता रहे हैं । चार वेद, छः दर्शन, धनुर्वेद, स्थापत्य वेद आदि चार उपवेद - ये सारी विद्याएँ जानता हूँ , तंत्र-मंत्रादि भी जानता हूँ किन्तु जिसको जानने के बाद और कुछ जानना शेष नहीं रहता, जिसमें स्थिर होने के बाद बड़े भारी दुःख से भी आदमी चलायमान नहीं होता उस निर्दुःख पद का, उस आत्मांनुभव का आनंद अभी तक नहीं मिला । मुझे अभी तक हर्ष-शोक व्यापता है । भगवन् ! मेरे हृदय की बात तो मैं ही जानता हूँ । लोग बिचारे क्या जानेंगे ?''

अपना साक्षी आप है निज मन माहिं विचार ।
नारायण जो खोट है उसको तुरत निकाल ॥

जो कमियाँ हैं, उन्हें ढूँढकर निकालने लग जाओ तो तुरंत कल्याण हो जाये ।

देवर्षि नारद की विनययुक्त प्रार्थना सुनकर सनकादि ऋषियों ने कहा : ''**यो वै भूमा तत् सुखम्** । उस भूमा, व्यापक ब्रह्म-परमात्मा को ज्यों-का-त्यों जान । आकृतियों में जो देवी-देवता हैं, वे सब अच्छे हैं लेकिन ये सारी आकृतियाँ जहाँ से प्रकट होती हैं, जिसकी सत्ता से बोलती हैं और जिसमें विलय हो जाती हैं, उस भूमा ईश्वर को जानोगे, तब पूर्ण सुखी हो जाओगे ।''

तब सनकादि ऋषियों के तत्त्वज्ञान के उपदेश से नारदजी हर्ष-शोक से परे उस भूमा तत्त्व में स्थित हुए ।

यो वै भूमा तत् सुखम् ।

वास्तव में पूर्णता ही सत्य है । सबमें वही एक चैतन्य तत्त्व विराजमान है । उस एकत्व के अज्ञान से ही राग, द्वेष, अभिनिवेश, भय, शोक आदि पैदा होते हैं । सारे

दु:खों की सृष्टि होती है । कलह, विद्रोह आदि सब उस एक के अज्ञान से ही उत्पन्न होते हैं । कबीरजी ने ठीक ही कहा है :

एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाय ।

बहुत कुछ साध लिया, बहुत कुछ पा लिया लेकिन उस एक को छोड़कर पाया है तो वह सब टिकेगा नहीं और पूर्ण विश्रान्ति भी नहीं देगा । नरसिंह मेहता ने भी कहा :

ज्यां लगी आत्मतत्त्व चीन्यो नहि ।
त्यां लगी साधना सर्व झूठी ॥

अत: हमें चाहिए कि उसी एक को पाने के प्रयत्न में लगें और यह तभी संभव होगा जब हम अपने दोषों को, अपनी दुर्बलताओं को जानकर उसे उखाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध हो जायें ।

दुर्बलता, कमजोरी दो प्रकार की है : प्रेमपात्र से भेद मानना, 'वह पराया है... दूर है... मरने के बाद मिलेगा...' ऐसा बेवकूफीभरा विचार यह पहली कमजोरी है । जो **'आद सत् जुगाद सत् है भी सत् नानक होसे भी सत्'** है ऐसे उस व्यापक परब्रह्म परमेश्वर के लिए यह मानना कि 'भाई ! हम तो संसारी हैं । हम कैसे पा सकते हैं...? हम भक्त तो हैं पर उस सुख को पाना हमारे बस की बात कहाँ...?' यह बड़ी भारी मूर्खता है ।

उस प्रेमास्पद को पराया मानना, उसमें भेद मानना अथवा तो ऐसा कहो कि भक्त होकर भी उससे विभक्त रहना यह बड़ी कमजोरी है, हमारे मन की दुर्बलता है । अपने से वह अलग है या अपने से वह भिन्न सत्ता है - यह मानना बड़ी भारी भूल है ।

अपने से भिन्न मानकर फिर उसकी खोज करना यह दूसरी दुर्बलता है । जैसे, छोटा-सा बालक आईने में अपने ही प्रतिबिंब को दूसरा बालक मान बैठता है या चिड़िया आईने में अपने प्रतिबिंब को ही दूसरी चिड़िया मानकर, अपने से भिन्न मानकर चोंचें ठोकती है ।

मैंने सुनी है एक कहानी :

गुलाम नबीर जा रहा था खेत में । रास्तें में उसे एक दर्पण का टुकड़ा मिला । यह बात तब की है जब दर्पण इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ था । जैसे ही गुलाम नबीर ने उसमें देखा तो अपना प्रतिबिंब देखकर उसे लगा : 'अरे, यह तो अब्बाजान का चित्र है !' उसके अब्बाजान गुजर चुके थे अत: उन्हें याद करके रो पड़ा और बोला : 'अब्बाजान ! मेरी औरत ने तुम्हें बुहत सताया था... अब मैं तुम्हें घर ले चलूँगा, रोज तुम्हारा दीदार करूँगा, अब्बाजान !'

था तो उसका स्वयं का प्रतिबिंब, किन्तु अब्बाजान का चित्र मानकर उसे घर ले आया । पत्नी भैंस दोह रही थी, उससे बोला : ''तू इधर मत देखना, मैं खास काम कर रहा हूँ ।'' यह कहकर चुपके से एक पेटी में उस फोटो (दर्पण के टुकड़े) को छुपा दिया और खेत पर चल दिया ।

हमारा वास्तविक स्वरूप प्रेमास्पद ही है । उसी प्रेमास्पद में विश्रांति पाना है और यह कोई कठिन काम नहीं है लेकिन जिनको कठिन नहीं लगता है ऐसे ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों का मिलना कठिन है... और यदि मिल भी जायें तो उनमें श्रद्धा होना कठिन है ।

उसके जाने के बाद उसकी पत्नी को जिज्ञासा हुई कि 'पता नहीं क्या है ? देखने का मना कर गये हैं ! लाओ, जरा देखूँ ।' इन्कार भी तो आमंत्रण देता है । ढूँढते-ढूँढते वह दर्पण का टुकड़ा उसके हाथ लग गया । उसमें देखते ही उसने समझा कि यह गुलाम नबीर की प्रेयसी का फोटो है और वह गरज उठी : 'यह औरत ? इसने ही मेरा घर बरबाद कर दिया...'

दर्पण में प्रतिबिंब तो उसीका था । अपने ही प्रतिबिंब को अब्बाजान का चित्र समझकर गुलाम नबीर प्यार करता है और अपने ही प्रतिबिंब को दूसरी स्त्री समझकर उसकी पत्नी द्वेष करती है ।

राग भी पराये में होता है और द्वेष भी पराये में होता है । अपने में तो सिर्फ प्रेम ही होता है । हमारा वास्तविक स्वरूप प्रेमास्पद ही है । उसी प्रेमास्पद में विश्रांति पाना है और यह कोई कठिन काम नहीं है

लेकिन जिनको कठिन नहीं लगता है ऐसे ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों का मिलना कठिन है... और यदि मिल भी जायें तो उनमें श्रद्धा होना कठिन है ।

अष्टावक्रजी कहते हैं राजा जनक से :

श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व नात्र मोहं कुरुष्व भोः ।
ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परः ॥

'हे सौम्य ! हे प्रिय ! श्रद्धा कर, श्रद्धा कर । इसमें मोह मत कर । तू ज्ञानरूप ईश्वर परमात्मा प्रकृति से परे है ।' (अष्टावक्रगीता : १५.८)

काला-गोरा होनेवाला चमड़ा तू नहीं है, भूख-प्यास जिसको लगती है वह प्राण तू नहीं है । यह पंचभौतिक शरीर तू नहीं है, सुखी-दुःखी होनेवाला मन तू नहीं है, राग-द्वेष से पचनेवाली बुद्धि तू नहीं है । प्रकृति से परे तू अपने-आपमें आ जा ।

कोई समझता है : 'चलो, गाड़ी मिल गयी, बंगला मिल गया, हाश !' लेकिन यह 'हाश !' यह 'अहा !!' कब तक ? असुविधा में दुःखी होना और सुविधा में हर्षित होना - यह भी एक कमजोरी है । सुविधा भी जानेवाली चीज है और असुविधा भी जानेवाली चीज है ।

कोई हाल मस्त कोई माल मस्त ।
कोई तूती मैना सुए में ॥
कोई खान मस्त पहरान मस्त ।
कोई राग-रगिनी दोहे में ॥
कोई अकल मस्त कोई शकल मस्त ।
कोई चंचलताई हाँसी में ॥
इक खुद मस्ती बिन और मस्त ।
सब बँधे अविद्या फाँसी में ॥

जो अविद्यमान शरीर है, अविद्यमान परिस्थिति है उसमें बँध जाते हैं । भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ।** 'सुख आ जाये चाहे दुःख आ जाये, उससे जो प्रभावित नहीं होता, मेरे मत में वह परम योगी है ।'

तस्मात् योगी भवार्जुन ।

'इसलिए हे अर्जुन ! तू योगी बन ।'

मैं अपने साधकों से कहता हूँ कि :

तस्मात् योगी भव मम साधक । दृढ़ निश्चय कर लो कि इसी जन्म में उस प्रेमास्पद का, उस दुलारे का अनुभव करना है । इसी जन्म में, इसी शरीर में और अभी ही जो **आद सत् जुगाद सत् है भी सत नानक ! होसे भी सत्** है उस अकाल को, उस परमेश्वर को पराया मानने की गल्ती को निकाल देंगे और वह हमें नहीं मिलेगा इन नकारात्मक विचारों को निकाल फेंकेंगे ।

हरि ॐ... ॐ... ॐ...

जब भेदबुद्धि होती है तब राग-द्वेष, भय-चिंता, विकार और कलह उत्पन्न होते हैं । जब अभेदज्ञान हो जाता है कि एक ही सत्ता है, एक ही आत्मतत्त्व है और वही मेरा अपना-आपा है तब सब चिंता, विकार, परेशानियाँ दूर हो जाती हैं ।

जब भेदबुद्धि होती है तब राग-द्वेष, भय-चिंता, विकार और कलह उत्पन्न होते हैं और जब अभेदज्ञान हो जाता है कि एक ही सत्ता है, एक ही आत्मतत्त्व है और वही मेरा अपना-आपा है तब सब चिंता, विकार, परेशानियाँ दूर हो जाती हैं, रोम-रोम उस अन्तर्यामी राम की मस्ती से सराबोर होने लगता है और साधक सहज ही में कह उठता है :

देखा अपने आपको मेरा दिल दीवाना हो गया ।
ना छेड़ो मुझे यारों ! मैं खुद पे मस्ताना हो गया ॥

अष्टावक्रजी कहते हैं जनक से :

श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व... 'श्रद्धा कर, तात ! श्रद्धा कर । तू प्रकृति से परे है । तू सुख-दुःख से परे है । तू सुख-दुःख का भोक्ता मत बन ।'

जब सुख और दुःख का भोक्ता बनने की आदत कम होती जायेगी तो दुःखहारी श्रीहरि का अनुभव तुम्हारा अनुभव होता जायेगा, सुखस्वरूप आत्मा का अनुभव तुम्हारा अनुभव होता जायेगा । यह काम कठिन नहीं है किन्तु अटपटा है, झटपट समझ में नहीं आता और एक बार समझ में आ जाये तो सारी खटपट मिट जाती है, महाराज !

...और यह सच्ची समझ आती है योगवाशिष्ठ, उपनिषदों आदि के अध्ययन एवं ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के सान्निध्य से ।

निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कबीरजी कहते हैं :

निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है...
बख्खड़ ऊपर गौ वीयाई उसका दूध बिलोता है ॥
मक्खन मक्खन साधु खाये छाछ जगत को पिलाता है ।
निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है...

निरंजन वन में... अंजन माने इन्द्रियाँ । जहाँ इन्द्रियाँ न जा सके वह है निरंजन । उस निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है । उस वन में किसी साथी, किसी व्यक्ति का साथ में प्रवेश नहीं हो सकता । कई लोग तो सुबह के सुंदर वातावरण में घूमने जाते हैं तब भी अकेले नहीं जाते । अरे ! जन्म लेना अकेले, मरना अकेले, नींद करनी अकेले, पाप-पुण्य का फल भोगना अकेले । जब अकेले ही करना है तो किसी दूसरे पर भरोसा क्या करता ? अतः साधना-पथ में अकेले ही जाना चाहिए । इसीलिए कबीरजी ने कहा होगा : **निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है ।** अतः अकेले आगे बढ़ना चाहिये ।

ये शब्द बहुत सीधे-सादे हैं लेकिन पूरा वेदान्त कूट-कूटकर भर दिया है कबीरजी ने । वे पूरे अनुभव की बात कर रहे हैं । अज्ञानी मनुष्य दो भी होंगे तो हजार बातें होंगी लेकिन हजार ज्ञानी मिलकर भी बोलेंगे तो एक ही अनुभव की बात आ जाती है ।

बख्खड़ ऊपर गौ वीयाई उसका दूध बिलोता है... जैसे गाय बियाती है तो दूध देती है ऐसे ही इड़ा और पिंगला के मध्य स्थित सुषुम्ना का द्वार जब खुलता है तब वृत्ति ब्रह्मानंद देती है । **'बख्खड़ ऊपर'** का तात्पर्य है ऊँची अवस्था । **मक्खन मक्खन साधु खाये...** वास्तव में होना तो ऐसा चाहिए कि साधु खुद छाछ पियें और दूसरों को मक्खन खिलायें किन्तु यहाँ साधु स्वयं मक्खन खाते हैं और दूसरों को छाछ पिलाते हैं । यह कैसे ? वास्तव में कबीरजी यहाँ यह आध्यात्मिक मर्म बताना चाहते हैं कि शुद्ध ईश्वरीय मस्ती तो साधु लेते हैं और उनके अनुभव को छूकर आती हुई वाणी का लाभ लोग लेते हैं । जैसे मक्खनवाली छाछ में कुछ कण मक्खन के रह ही जाते हैं ऐसे ही शुद्ध ब्रह्मानुभव है मक्खन और उस अनुभव को छूकर आती हुई वाणी है छाछ । साधु स्वयं तो ब्रह्मानुभवरूपी मक्खन का स्वाद लेता है और कभी-कभार लोकहितार्थ कुछ बोल देता है तो उस छाछरूपी वाणी का पान करने का लाभ लोगों को मिल जाता है । अगर वे छाछ भी हजम कर लें तो उनका बेड़ा पार हो जाता है ।

कबीरजी आगे कहते हैं :

तन की कुण्डी मन का सोटा हरदम बगल में रखता है ।
पाँच-पच्चीस मिलकर आवे उनको घोंट मिलाता है ॥
निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है...

तन की कुण्डी मन का सोटा अर्थात् जैसे खरल-दस्ते में ठण्डाई घोंटते हैं ऐसे ही साधु पुरुष तन-मनरूपी खरल-दस्ते का उपयोग करके आत्मज्ञानरूपी ठण्डाई घोंट-घोंटकर लोगों को पिलाते हैं । जैसे खरल-दस्ते को हम अपना साधन समझकर अपने नियंत्रण में रखते हैं वैसे ही साधु पुरुष तन-मन को बगल में रखते हैं अर्थात् अपने नियंत्रण में रखते हैं, अपने आदेश में रखते हैं । अपनी आज्ञा में ही क्यों रखते हैं ? क्या अहंकार सजाने के लिए ? नहीं नहीं, कोई आ जाये परमात्म-रस पीनेवाले तो उनके

> *कभी-कभी शांत होकर वृत्तियों के खेल को निहारना चाहिए । शांत होकर बैठें और जो वृत्ति उठे उसे देखें ।*

लिए तन-मन का उपयोग करके रामनाम का रस पिलाने के लिए तन-मन को अपनी आज्ञा में रखते हैं ।

आगे कबीरजी कहते हैं :

कागज की एक पूतली बनायी उसको नाच नचाता है ।
आप ही नाचे आप ही गावे आप ही ताल मिलाता है ॥
निरंजन वन में साधु अकेला खेलता है...

कागज की एक पूतली बनायी अर्थात् अपनी आत्माकार एक वृत्ति बनायी । कागज नाम क्यों दिया ? क्योंकि वृत्ति कोई भी हो वह ठोस नहीं होती, उसमें शाश्वतता नहीं होती। जैसे कागज की पूतली ठोस नहीं होती ऐसे ही वृत्ति ठोस नहीं होती । साधु आत्माकार वृत्ति बनाकर उसको अपनी आत्मसत्ता से नचाता है । जैसे तरंग को सत्ता पानी की है ऐसे ही अपनी वृत्ति को वृत्ति के आधार परमात्मा की, आत्मा की सत्ता है । **'आप ही नाचे...'** उस वृत्ति में फिर वह स्वयं ही गाता है, स्वयं ही नाचता है और स्वयं ही ताल मिलाता है ।

हम वृत्ति के साथ जुड़ जाते हैं, वृत्तियाँ इन्द्रियों के साथ जुड़ जाती हैं और इन्द्रियाँ जगत् के साथ जुड़ जाती हैं, हमारा पतन हो जाता है ।

जैसे तरंग सरोवर से भिन्न नहीं, वैसे ही वृत्ति अपने अधिष्ठान परमात्मा से भिन्न नहीं होती । जैसे तरंगें भिन्न-भिन्न दिखती हैं वैसे ही एक ही वृत्ति के भिन्न-भिन्न नाम हैं । उस सच्चिदानंद परमात्मा से जो वृत्ति फुरती है, वह वृत्ति जब मनन करती है तब उसे **'मन'** कहते हैं, निश्चय करती है तब उसे **'बुद्धि'** कहते हैं, चिंतन करती है तब उसे **'चित्त'** कहते हैं, देह में अहं करती है तब उसे **'अहंकार'** बोलते हैं और देह के साथ जुड़कर जब जीने की इच्छा रखती है तब उसे **'जीव'** कहते हैं ।

बुद्धि शुद्ध परमात्मा की ओर चले, मन उसमें सहयोग दे और इन्द्रियाँ उसके पीछे चलें तो हो जायेगा ज्ञान ।

ऐसा नहीं है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और जीव- ये पाँच अंदर घुसे हुए हैं वरन् चैतन्य से फुरनेवाली वृत्तियों के ही ये भिन्न-भिन्न नाम हैं । साधना करने की वृत्ति है तो साधक, भक्ति करने की वृत्ति है तो भक्त, योग करने की वृत्ति है तो योगी, भोग करने की वृत्ति है तो भोगी, त्याग करने की वृत्ति है तो त्यागी, साधना का जतन करने की वृत्ति है तो जति और तप करने की वृत्ति है तो तपस्वी । चैतन्य से स्फुरित होनेवाली वही वृत्ति है किन्तु जैसे-जैसे संस्कार और गुण उससे जुड़ जाते हैं वैसा-वैसा उस मनुष्य का नाम हो जाता है । है सब वृत्तियों का ही खेल ।

कभी-कभी शांत होकर वृत्तियों के खेल को निहारना चाहिए । ऐसा नहीं कि सारा दिन 'राम... राम... राम...' ही करते रहे । नहीं, कभी शांत होकर बैठें और जो वृत्ति उठे उसे देखें कि 'अच्छा, मनन कर रही है, इसीलिए तेरा नाम **'मन'** पड़ा । तुझे सत्ता तो मैं ही दे रहा हूँ ।' इस प्रकार का प्रयोग करने से ऐसा अद्भुत लाभ होगा कि महाराज ! तपस्वियों को १२-१२ वर्ष तप करने से भी कई बार वैसा लाभ नहीं हो पाता ।

हम वृत्ति के साथ जुड़ जाते हैं, वृत्तियाँ इन्द्रियों के साथ जुड़ जाती हैं और इन्द्रियाँ जगत् के साथ जुड़ जाती हैं, हमारा पतन हो जाता है । सबसे पहले है हमारा चैतन्य स्वरूप परमात्मा । फिर वृत्तियाँ । फिर इन्द्रियाँ और फिर जगत् । इन्द्रियाँ मन को खींचे और उसके पीछे चले बुद्धि तो जीव हो गया अज्ञानी । लेकिन बुद्धि शुद्ध-अशुद्ध का निर्णय करके परमात्मा की ओर चले, मन उसमें सहयोग दे और इन्द्रियाँ उसके पीछे चलें तो हो जायेगा ज्ञान । बस, इतना ही है, ज्यादा कुछ नहीं है । इसीमें सब साधनाओं का सार आ गया । फिर चाहे तुम **'हरि ॐ'** करो या **'नमो अरिहंताणं'** करो, **'झुलेलाल'** करो या **'राम-राम'** करो । ये सब सात्त्विक स्थितियाँ हैं । अंत में परम लक्ष्य तो केवल परमात्मज्ञान ही है ।

जैसे सरोवर की सत्ता से लहर उठती है वैसे ही अपना जो वास्तविक स्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है, उसीकी सत्ता से वृत्ति फुरती है । यदि वह वृत्ति निर्णयात्मक

(शेष पृष्ठ २७ पर)

सब सम्भव है...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हे नवयुवकों ! तुम्हारे लिए असंभव कुछ नहीं है । तुम सब कुछ कर सकते हो । दुर्बल विचारों को झाड़ फेंको । भारत देश में जन्म होते हुए भी दीन-हीन-दुःखी हो रहे हो ? यह बड़ी शर्म की बात है । उठो, जागो... आलस्य को भगाओ और भारतीय संस्कृति के आधाररूप शास्त्रों में वर्णित प्राणायाम, ध्यान, योगासन, आहारशुद्धि के नियम आदि के माध्यम से अपने जीवन को गुलाब की नाईं महकाओ... अगर तुमने इन बातों को अपना लिया तो फिर तुम जो चाहो, वह कर सकते हो ।

हे नवयुवकों ! तुम्हारे लिए असंभव कुछ नहीं है । तुम सब कुछ कर सकते हो । दुर्बल विचारों को झाड़ फेंको ।'

रामूर्ति नामक एक विद्यार्थी बहुत पतला-दुबला और दमे की बीमारी से ग्रस्त था । शरीर से इतना कमजोर था कि स्कूल जाते-जाते रास्ते में ही थक जाता और धरती पकड़कर बैठ जाता । जबकि राममूर्ति के पिता खूब मोटे-ताजे एवं तंदुरुस्त थानेदार थे ।

भारतीय संस्कृति के आधाररूप शास्त्रों में वर्णित बातों को अपना लिया तो फिर तुम जो चाहो, वह कर सकते हो ।

हर बाप अपने बेटे को अपने जैसा बनाना चाहता है । राममूर्ति के पिता भी राममूर्ति का प्रभावशाली व्यक्तित्व देखना चाहते थे, किंतु पुत्र की शारीरिक दुर्बलता देखकर वे खिन्न हो जाते थे । राममूर्ति को बार-बार अस्पताल में दाखिल कराना पड़ता था इससे परेशान होकर वे बोल पड़ते : ''मेरा बेटा होकर तुझे अस्पताल में भरती होना पड़ता है ? इससे तो अच्छा होता कि तू मर जाता ।''

अपने पिता द्वारा बार-बार इस प्रकार तिरस्कृत होने से बालक राममूर्ति उदास हो जाता और उसका मनोबल टूट जाता लेकिन ऐसे समय में राममूर्ति की माँ अपने बेटे को संभाल लेती थी । माँ सिर पर हाथ घुमाती हुई, प्रेम से पुचकारती हुई राममूर्ति से कहती : ''मेरे लाल ! तेरे पिता की बातों का बुरा मत मानना । अत्यधिक चिंता के कारण ही वे अपना धैर्य खो बैठते हैं । तू तो मेरा अच्छा बेटा है । तू जरूर एक दिन ऐसा वीर बनेगा कि लोग भी आश्चर्य-चकित हो उठेंगे ।''

माँ सत्संगी थी । वह जानती थी कि स्वीकारात्मक विचारों में बहुत शक्ति है । उसने राममूर्ति को प्राणायाम का प्रयोग कराना शुरू करवा दिया । प्राणायाम के प्रयोग से राममूर्ति को लाभ होने लगा । धीरे-धीरे वह भी माँ के साथ सत्संग-कथा में जाने लगा । कभी रामायण के प्रसंग में सुनता कि 'हनुमानजी के एक घूँसा मारने से लंकिनी हाथ जोड़कर बैठ गई... पांडवों की शूरवीरता के प्रसंग में सुनता कि महाभारत के युद्ध में भीम ने हाथियों को पकड़कर, घुमाकर इतने जोर से ऊपर फेंका कि वे बेचारे गुरुत्वाकर्षण की सीमा से पार पहुँचकर आज भी अंतरिक्ष में घूम रहे हैं...

इस प्रकार महान् योद्धाओं के चरित्र सुनकर राममूर्ति अपनी माँ से कहता : ''माँ ! मैं भी वीर हनुमान, पराक्रमी भीम और शूरवीर अर्जुन जैसा कब बनूँगा ? माँ ! क्या मैं ऐसा बन सकता हूँ जिससे पिताजी को शिकायत करने का कोई मौका ही न मिल सके... नाराज होने का मौका ही न मिल सके ?''

राममूर्ति की जिज्ञासा देखकर माँ बहुत प्रसन्न

हुई । माँ भारतीय संस्कृति का आदर करती थी । सत्संग में जाने से हमारे ऋषि-मुनियों के बताये हुए प्रयोगों की थोड़ी-बहुत जानकारी उसे थी । अत: उसने उन प्रयोगों को राममूर्ति पर आजमाना शुरू कर दिया ।

सुबह उठकर खुली हवा में दौड़ लगाना, तत्पश्चात् सूर्य की किरणों में योगासन-प्राणायाम करना, दंड-बैठक लगाना, उबले अंजीर का प्रयोग करना... इत्यादि से राममूर्ति का दमे का रोग तो मिट गया साथ ही उसके फेफड़ों में प्राणशक्ति का इतना बल आ गया कि एक दिन नाले में फँसी हुई भैंस को, जिसे गाँव के अन्य लोग नहीं निकाल पा रहे थे, बल्कि कोशिश करनेवाले खुद ही दलदल में फँस जाते थे, उसे अपने बाहुबल से अकेले ही निकाल दिया । अब तो कहना ही क्या था ? लोग राममूर्ति को पहलवान राममूर्ति के नाम से पहचानने लगे ।

माँ सत्संगी थी । वह जानती थी कि स्वीकारात्मक विचारों में बहुत शक्ति है । उसने राममूर्ति को प्राणायाम का प्रयोग कराना शुरू करवा दिया । प्राणायाम के प्रयोग से राममूर्ति को लाभ होने लगा ।

अंग्रेजी में एक कहावत है :

"Only in the Dictionary of a fool one Can find the word impossible."

अर्थात् 'असम्भव' शब्द सिर्फ मूर्खों के शब्दकोष में देखने को मिलता है ।

Nothing is Impossible. Everything is possible.

अर्थात् असम्भव कुछ नहीं है । सब सम्भव है ।

दमे की बीमारी से ग्रस्त राममूर्ति प्राणबल से पहलवान राममूर्ति बन गये । धीरे-धीरे पहलवान राममूर्ति ने अपने बल से ऐसे प्रयोग कर दिखाये कि भारत में ही नहीं, विदेश में भी उनकी प्रसिद्धि होने लगी ।

दमे की बीमारी से ग्रस्त राममूर्ति प्राणबल से पहलवान राममूर्ति बन गये । धीरे-धीरे पहलवान राममूर्ति ने अपने बल से ऐसे प्रयोग कर दिखाये कि भारत में ही नहीं, विदेश में भी उनकी प्रसिद्धि होने लगी ।

एक बार युरोप का पहलवान युंजियन सेंडो भारत में आया । उसे इस बात का घमंड था कि सारे युरोप खंड में कोई भी उसे कुश्ती में हरा नहीं सकता । राममूर्ति ने युंजियन सेंडो को संदेश भिजवाया कि वह उनके साथ कुश्ती करे ।

यह सुनकर युंजियन सेंडो को आश्चर्य हुआ कि मेरे साथ कुश्ती करने के लिए किसकी हिम्मत हो रही है ! उसने राममूर्ति के बारे में जाँच करवाई । युंजियन सेंडो को जब खबर मिली कि राममूर्ति १२०० रतल वजन उठा लेता है तब वह घबरा गया क्योंकि वह ८०० रतल वजन ही उठा सकता था । उसे डर लगा कि यदि मैं राममूर्ति के साथ कुश्ती करने गया तो वह मुझे जरूर धरती सूँघा देगा... दिन में तारे दिखा देगा... मेरा सारा यश मिट्टी में मिल जाएगा ।

युंजियन सेंडो ने बहाना बनाया : ''हम गोरे लोग हैं । हिन्दुस्तानी से हाथ नहीं मिलाते ।''

राममूर्ति को यह सुनकर दु:ख हुआ । उससे जीत हाँसिल कर न सके इस बात का दु:ख नहीं, वरन् अपने देश का अपमान देखकर दु:ख हुआ । राममूर्ति ने उसी समय लोकमान्य तिलक से निवेदन किया :

''हकीकत में युंजियन सेंडो मुझसे कुश्ती करने में असमर्थ है किन्तु बहाना हमारे हिन्दुस्तानी होने का, काले होने का बनाता है । यह हमारे देश का अपमान है, जो मैं कभी बर्दास्त नहीं कर सकता । अत: कृपया आप मेरी मदद करें ।''

लोकमान्य तिलक ने जवाब दिया : ''युंजियन सेंडो तुम्हारे साथ कुश्ती तो नहीं करेगा परंतु हमें भी दिखाना होगा कि भारतवासी यदि कोई कार्य के लिए डट जाता है तो उसे पूरा करके ही छोड़ता है । तुम अपना एक कार्यक्रम बनाओ और प्राणशक्ति के बल के कुछ प्रयोग दिखाओ ।''

राममूर्ति ने एक सर्कस निकाला जिसमें प्राणशक्ति द्वारा अद्भुत प्रयोग करके दिखाये । उन्होंने प्राणायाम का अभ्यास किया था, प्राणशक्ति का विकास किया था, अत: उनका प्राणबल इतना बढ़ चुका था कि २५-२५ होर्स पॉवर की जीपों को दोनों हाथों से पकड़ते और जीपें चालू करने के लिए कहते । जीपों के पहिए घरघराने लगते और वहीं के वहीं घूमते परन्तु राममूर्ति की शक्ति के कारण आगे नहीं चल पाते । राममूर्ति लेटकर अपनी छाती पर पटिया रखकर उस पर से हाथी को चलवाते, १६-१६ आदमियों को बैलगाड़ी में बिठाकर अपने शरीर पर से उसका पहिया चलवाते किन्तु उनका बाल तक बाँका नहीं होता । ऐसे अन्य कई चमत्कार दिखाकर राममूर्ति ने लोगों को एवं युंजियन सेंडो को दाँतों तले ऊँगली दबाने के लिए विवश कर दिया ।

भारत में कई ऐसे सपूत हो गये जो पूर्व जीवन में साधारण थे लेकिन ऋषि-मुनियों के प्रसादरूप ध्यान, जप, प्राणायाम, योगासन एवं दृढ़ संकल्प के माध्यम से दुनिया को चकित करनेवाले हो गये ।

हे युवकों ! तुम भी हिम्मत मत हारना, निराश मत होना । अगर कभी असफल भी हुए तो हताश मत होना । वरन् पुन: प्रयास करना, ऋषियों द्वारा वर्णित प्राणायाम ध्यानादि की विधि को सीखकर अपना मनोबल, प्राणबल बढ़ाना । फिर तुम जो चाहोगे, वह कर सकने में समर्थ हो जाओगे । तुम्हारे लिए असंभव कुछ भी नहीं होगा । ॐ... ॐ... ॐ...

❀

राजेन्द्रबाबू की दृढ़ता

राजेन्द्रबाबू बचपन में जिस विद्यालय में पढ़ते थे, वहाँ कड़क अनुशासन था । एक बार राजेन्द्रबाबू मलेरिया के रोग से पीड़ित होने से परीक्षा बड़ी मुश्किल से दे पाए थे । एक दिन प्राचार्य उनके वर्ग में आकर कहने लगे : ''प्यारे बच्चों ! मैं जिनका नाम बोल रहा हूँ वे सब विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं ।''

प्राचार्य ने नाम बोलना शुरू कर दिया । पूरी लिस्ट खत्म हो गयी फिर भी राजेन्द्रबाबू का नाम नहीं आया । तब राजेन्द्रबाबू ने उठकर कहा : ''साहब ! मेरा नाम नहीं आया ।''

प्राचार्य ने गुस्सा होकर कहा : ''तुमने अनुशासन का भंग किया है । जो विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए हैं उनका ही नाम है, समझे ? बैठ जाओ ।''

''लेकिन मैं पास हूँ ।''

''पाँच रूपये दंड ।''

''आप भले दंड दीजिए, परंतु मैं पास हूँ ।''

''दस रूपये दंड ।''

''आचार्यदेव ! भले मैं बीमार था, मुझे मलेरिया हुआ था लेकिन मैंने परीक्षा दी है और मैं उत्तीर्ण हुआ हूँ ।''

''पन्द्रह रूपये दंड ।''

''मैं पास हूँ... सच बोलता हूँ ।''

''बीस रूपये दंड ।''

''मैंने पेपर ठीक से लिखा था ।''

प्राचार्य क्रोधित हो गये कि मैं दंड बढ़ाता जा रहा हूँ फिर भी यह है कि अपनी जिद्द नहीं छोड़ता है !

''पच्चीस रूपये दंड ।''

''मेरा अंतरात्मा नहीं मानता है कि मैं फैल हो गया हूँ ।''

जुर्माना बढ़ता जा रहा था । इतने में एक क्लर्क दौड़ता-दौड़ता आया और उसने प्राचार्य के कानों में कुछ कहा । फिर क्लर्क ने राजेन्द्रबाबू के करीब आकर कहा : ''क्षमा करो । तुम पहले नंबर से पास हुए हो लेकिन साहब की इज्जत रखने के लिए अब तुम चुपचाप बैठ जाओ ।''

राजेन्द्रबाबू नमस्कार करके बैठ गये ।

राजेन्द्रबाबू ने अपने हाथ से पेपर लिखा था । उन्हें दृढ़ विश्वास था कि मैं पास हूँ तो उन्हें कोई डिगा नहीं सका । आखिर उनकी ही जीत हुई । दृढ़ता में कितनी शक्ति है ! मानव यदि किसी भी कार्य को तत्परता से करे और दृढ़ विश्वास रखे तो अवश्य सफल हो सकता है ।

दृढ़ता में कितनी शक्ति है ! मानव यदि किसी भी कार्य को तत्परता से करे और दृढ़ विश्वास रखे तो अवश्य सफल हो सकता है ।

स्वामी रामतीर्थ की अद्वैत निष्ठा

जिनको सबमें अपना ईश्वर दिखता है उनके लिए जात-पाँत का, अपने-पराये का ज्यादा महत्त्व नहीं रहता है । व्यवहार में भले ही वे कह दें कि 'यह अपना आदमी है, अपना साधक है' लेकिन उन महापुरुषों के लिए तो प्राणीमात्र अपने परमात्मा की ही विभूति है । ऐसे महापुरुष विश्वजीत होते हैं । वे जहाँ भी जायें, सब जगह उन्हें अपना-आपा ही नजर आता है ।

स्वामी रामतीर्थ अमेरिका गये थे । जहाज अमेरिका के करीब था । सब लोग अपना सामान समेट रहे थे । स्वामी रामतीर्थ निश्चिंत-से बैठे थे । उनके पास तो कोई सामान ही नहीं था ।

किसीने पूछा : ''आप किसके यहाँ जा रहे हैं ? अमेरिका में आपका कौन-सा परिचित है ? आपको लेने के लिए कौन आयेगा ?''

स्वामी रामतीर्थ ने पूछनेवाले के कंधे पर हाथ रखा और बोले : ''मेरा पहचानवाला भी यहाँ है, मेरा अपना भी यहाँ है और मुझे लेने के लिए आनेवाला भी यहाँ है ।''

''कौन है ? कहाँ है ?''

स्वामी रामतीर्थ : ''तुम ही तो हो ।''

रामतीर्थ की अद्वैतनिष्ठ ने उसके चित्त में प्रेम और आनंद भर दिया और वह स्वामी रामतीर्थ का भक्त हो गया । वह रामतीर्थ को अपने घर ले गया । स्वामी रामतीर्थ वहाँ आनंद से रहे ।

जिसको सर्वत्र सबमें अपना परमात्म-तत्त्व ही दिखता है उसको यह चिंता नहीं होती कि 'मैं कहाँ जाऊँगा ? क्या खाऊँगा ? मेरा क्या होगा ?' वह तो ईश्वर के सहारे होता है, निश्चिंत और निर्भय होता है अत: ईश्वर भी उसका ख्याल रखते हैं ।

❀

परमात्मा सबमें है

मनु महाराज अपनी पत्नी के साथ **ईशावास्यमिदं सर्वम्** का मंत्रजाप कर रहे थे । उनका भाव था कि परमात्मा सर्वत्र है और सबमें छुपा हुआ है । वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है और महान् से भी महान् है । वह अणु से भी अणु है अत: चींटी के अंदर भी उसकी चेतना है और वह महान् से भी महान् है अत: सारा ब्रह्मांड उसमें समाया हुआ है ।

एकान्त अरण्य में रात्रि के समय जब मनु महाराज ईशावास्य उपनिषद के इस मंत्र **ईशावास्यमिदं सर्वम्** का जप कर रहे थे, तब भयंकर निशाचर उनको अपना आहार बनाने के विचार से वहाँ आये । मनु महाराज ने उन्हें देखा किन्तु उनका दृढ़ संकल्प था कि परमात्मा सबमें है और सब परमात्मा में है अत: वे निर्भयता से जप करते रहे ।

मनु महाराज की दृढ़ भावना देखकर अव्यक्त ईश्वर को व्यक्त होना पड़ा । भगवान् ने प्रगट होकर असुरों का नाश कर दिया और मनु महाराज को अभयदान देकर अंतर्धान हो गये ।

लाखों हाथों ने पाया 'ऋषि प्रसाद'

यह हम सभी के लिये अत्यन्त ही हर्ष का प्रसंग है कि आत्मानुभवसंपन्न ऋषिवर की वाणी 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के द्वारा प्रत्येक माह ३ लाख श्रद्धालुओं तक घर बैठे ही पहुँच रही है । जो पत्रिकाएँ इस अध्यात्म क्षेत्र में पचासों वर्षों से हैं वे आज पीछे छूट गयी हैं जबकि इस पत्रिका ने अपने जीवन के मात्र सात बसंत ही देखे हैं ।

इस संक्षिप्त अन्तराल में यह अपने-आप में एक विरल उपलब्धि है ।

हम पूज्यश्री के सन्देश को, ऋषियों के प्रसाद को द्वार-द्वार तक पहुँचाने के संकल्प में आगामी वर्षों में और भी सफल होंगे ही क्योंकि आपका सहयोगरूपी संबल हमारे पास है ।

('ऋषि प्रसाद' कार्यालय)

निरावरण तत्त्व की महिमा

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

तत्त्वदृष्टि से जीव और ईश्वर एक हैं, फिर भी भिन्नता दिखती है । क्यों ? क्योंकि जब शुद्ध चैतन्य में स्फुरण हुआ तब अपने स्वरूप को भूलकर जो स्फुरण के साथ एक हो गया, वह जीव हो गया परन्तु स्फुरण होते हुए भी जो अपने स्वरूप को नहीं भूले, अपने को स्फुरण से अलग जानकर अपने स्वभाव में डटे रहे, वे ईश्वर कोटि के हो गये । जैसे, जगदम्बा हैं, श्रीराम हैं, शिवजी हैं ।

> *माया को वश करके जीनेवाले चैतन्य को ईश्वर कहते हैं । अविद्या के वश होकर जीनेवाले चैतन्य को जीव कहते हैं ।*

अब प्रश्न यह उठता है कि स्फुरण के साथ अपने को एक मान लेनेवाला कैसे जीता है ? जैसे किसी आदमी ने थोड़ी-सी दारू पी है, लेकिन सजग है और बड़े-मजे से बातचीत करता है किन्तु दूसरे ने ज्यादा दारू पी है, वह लड़खड़ाता है । जो खड़ा है, बातचीत कर रहा है, वह तो खानदानी माना जाएगा लेकिन जो लड़खड़ाता है वह शराबी माना जाएगा । लड़खड़ानेवाले को गिरने के भय से बचने के लिए बिना लड़खड़ानेवाले का सहारा चाहिए । इस तरह लड़खड़ानेवाला हो गया पराधीन और जो नहीं लड़खड़ाया है वह हो गया उसका स्वामी ।

> *जब आपकी निरावरण स्वरूप में स्थिति होती है, उसकी सत्ता-सामर्थ्य को जान पाते हैं क्योंकि आप भी वही चैतन्यरूप हो जाते हैं ।*

ऐसे ही शुद्ध चैतन्य में स्फुरण हुआ, उस स्फुरण को जो पचा गये वे ईश्वर कोटि के हो गये । उन्हें निरावरण भी कहते हैं । जो स्फुरण के साथ बह गये, अपने को भूलकर लड़खड़ाने लगे वे जीव हो गये । उन्हें सावरण कहते हैं । जो सावरण हैं वे प्रकृति के आधीन जीते हैं परन्तु निरावरण हैं वे माया को वश में करके जीते हैं । माया को वश करके जीनेवाले चैतन्य को ईश्वर कहते हैं । अविद्या के वश होकर जीनेवाले चैतन्य को जीव कहते हैं क्योंकि उसे जीने की इच्छा हुई और देह को 'मैं' मानने लगा ।

ईश्वर का चिन्मयवपु वास्तविक 'मैं' होता है । जहाँ से स्फुरण उठता है वह वास्तविक 'मैं' है । जितने भी उच्च कोटि के महापुरुष हो गये, वे भी जन्म लेते हैं तब तो सावरण होते हैं लेकिन स्फुरण का ज्ञान पाकर अपने चिन्मयवपु में 'मैं' पना दृढ़ कर लेते हैं तो निरावरण हो जाते हैं, ईश्वरस्वरूप हो जाते हैं । उन्हें हम ब्रह्मस्वरूप कहते हैं । ऐसे ब्रह्मस्वरूप महापुरुष हमें युक्ति-प्रयुक्ति से, विधि-विधान से निरावरण होने का उपाय बताते हैं, ज्ञान देते हैं । गरु के रूप में हम उनकी पूजा करते हैं । यदि ईश्वर और गुरु दोनों आकर खड़े हो जाएँ तो...

कबीरजी कहते हैं :

गुरु गोविंद दोऊ खड़े किसके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविंद दिया दिखाय ॥

हम पहले गुरु को पूजेंगे, क्योंकि गुरु ने ही हमें अपने निरावरण तत्त्व का ज्ञान दिया है ।

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदे विभागिनः ।

'ईश्वर और गुरु की आकृति दो दिखती हैं, वास्तव में दोनों अलग नहीं हैं ।'

पुराणों में आता है कि किसीने पुत्र की अभिलाषा से तप किया । उसके तप से भगवान प्रसन्न हुए और वरदान माँगने के लिए कहा । तपस्वी ने पुत्र की अभिलाषा व्यक्त की । **एवमस्तु** कहकर भगवान अंतर्धान हो गये । समय पाकर उसके घर पुत्र का

जन्म हुआ ।

जो महापुरुष निरावरण पद को प्राप्त हो जाते हैं वे ईश्वर कोटि के हो जाते हैं । वे महापुरुष मौज में आकर कह दें कि 'ऐसा हो जाएगा' तो वह हो जाता है । यह निरावरण तत्त्व में स्थिति की सामर्थ्य है ।

जैसे पावर-हाऊस की बिजली का सप्लाई तो वही का वही है, लेकिन उसका उपयोग जहाँ होता है वह साधन जितना बढ़िया होगा उतना ही कार्य अच्छा होगा । ईश्वर का संकल्प जहाँ से स्फुरित होता है वही चैतन्य आपका भी है । आपका संकल्प भी वहीं से स्फुरित होता है । ईश्वर के साधन बढ़िया हैं और आपके अंतःकरण और इन्द्रियाँ रूपी साधन घटिया हैं । है तो वही चैतन्य, फिर भी उसका सामर्थ्य सीमित रहता है । जब आपकी निरावरण स्वरूप में स्थिति होती है, तब उसकी सत्ता-सामर्थ्य को जान पाते हैं क्योंकि आप भी वही चैतन्य रूप हो जाते हैं । अभी भी आप वही रूप हैं मगर जानते नहीं हैं न ! नश्वर संसार के नाम और रूप में आसक्त होकर उसमें ही उलझ गये हैं ।

नाम और रूप का आधार तो एक ही है । तत्त्वज्ञान के अभाव में भेद दिखता है । वास्तव में भेद नहीं है । जीव और ईश्वर भी कहने भर को दो हैं । वास्तव में दो नहीं हैं ।

❀

भगवान परम कृपालु हैं

किसीने मुझसे प्रश्न किया :

''यदि भगवान सबका भला ही चाहते हैं तो किसी व्यक्ति के चोरी करने पर उसके हाथ में लकवा कर दें ताकि फिर कोई चोर ही न बने । यदि ऐसा चमत्कार कर दें कि किसीके झूठ बोलने पर उसकी जीभ कट जाये- तो आगे से कोई झूठ ही न बोल पाये । हमारी बहन पर किसी पड़ोसी के लड़के की बुरी नजर हो तो उस लड़के को ही अंधा बना डालें ताकि दूसरे किसीकी ऐसा करने की हिम्मत ही न हो । भगवान यदि अपनी शक्ति को इस प्रकार का 'महाप्रसाद' देने में लगायें तो इतने सारे पुलिस, सिपाही, थाने और कोर्ट-कचहरी आदि की आवश्यकता ही न रहे और सारी झंझटें खत्म हो जायें तथा संसार सुखमय, शांतिमय बन जाये ।''

सवाल तो बढ़िया लग रहा है लेकिन ऐहिक ज्ञान के संदर्भ में बढ़िया लग रहा है । कोई झूठ बोले और उसकी जीभ कट जाये, बुरी नजर से देखे और अंधा हो जाये, यदि ऐसा होने लगे तो मनुष्य का विकास रुक जायेगा । आपके कपड़े खराब हो जाते हैं तो क्या आप उन्हें फेंक डालते हो ? नहीं, वरन् आप उसे अच्छे-से धोकर साफ-सुथरा बनाने की कोशिश करते हो । आपका बेटा कोई गलत काम करता है तो क्या आप उसे घर से बाहर निकाल देते हो ? नहीं, घर से बाहर निकाल देना यह समस्या का हल नहीं है । आप उसे शांति से, प्रेम से समझाकर, आगे से ऐसी गलती न करने का सिखाकर, अच्छे जीवन की ओर प्रोत्साहित करके उसे सुधारने का प्रयास करते हो, विकसित करने का प्रयास करते हो ।

चार दिन की जिन्दगानी में भी आप अपने बेटे के विकास के लिए इतने दयालु बनते हो । यदि आपका पुत्र चोरी करता है तो 'उसे लकवा हो जाये' - ऐसा आप सोच भी नहीं सकते हो, यदि आपका पुत्र किसी लड़की की ओर बुरी नजर से देखने का अपराध करता है तो आपको उसकी आँखें फोड़ डालने की इच्छा नहीं होती है वरन् आप उसे समझाकर, टोककर, डाँट फटकारकर, मारकर 'दूसरी बार ऐसी गलती न हो' ऐसी चेतावती जरूर देते हो । फिर भी यदि वह जीवनभर अपराध ही करता रहे तब भी आपको उसके लिए लकवा होने या अंधे हो जाने का विचार हरगिज नहीं आयेगा ।

यदि भगवान इतने कठोर दिल के बन जाएँ तो मनुष्य के गिरने के बाद सँभलने की योग्यता का विकास नहीं होगा ।

जो पहले आपका न था, मरने के बाद आपका न रहेगा, उस पुत्र के लिए आप इतने उदारहृदयी बनते हो तो जो सदियों से हमारा पिता है, उस परम पिता परमेश्वर के हृदय में हमारे लिए

कितनी करुणा होगी ? यदि भगवान इतने कठोर दिल के बन जाएँ तो मनुष्य के गिरने के बाद सँभलने की योग्यता का विकास नहीं होगा । सिपाहियों को काम नहीं मिलेगा, न्यायाधीशों को अपराधी नहीं मिलेंगे तो संसार सुखद नहीं, अपितु भोगप्रधान बन जायेगा ।

भगवान तो सदैव हमें बुरे कर्मों से बचाने के लिए हमारे हृदय में अंतर्यामी अवतार लेकर प्रगट होते रहते हैं । यदि हम बुरे कर्म करके सफलता प्राप्त करते हैं और हमारे मित्र हमारी वाहवाही करते हैं फिर भी हमें हृदय में शांति, संतोष और सुख नहीं मिलता है । तब हमें बाह्य रूप से सजा देने के बजाय परम कृपालु परमेश्वर हमारे हृदय में ही अंतर्यामी अवतार लेकर हमें टोकता है, बुरे कर्मों से बचाकर हमें सुधारने की कोशिश करता है । इसी प्रकार जब हम सत्कर्म करते हैं, तब टोकनेवाले टोकते हैं फिर भी हमें आंतरिक खुशी मिलती है, हमारा अंतरात्मा, अंतर्यामी परमात्मा हमें धन्यवाद देता है ।

हमें सजग रखने के लिए इतना कुछ करने पर भी यदि हम गलत मार्ग पर ही आगे बढ़ते रहते हैं तो अंत में भी वह परम कृपालु परमात्मा निराश न होकर, इस जन्म में तो क्या दूसरा जन्म देकर भी हमें ऊपर उठने का मौका देता है । वह परमात्मा कितना उदार है ! कितना कृपालु है ! वास्तव में तो वही प्राणिमात्र का परम सुहृद एवं अकारण हित करनेवाला परम मित्र है । उसीकी शरण में रहने में आनंद है... उसीकी स्मृति में आनंद है ।

उपहार योजना का लाभ लें

अपने परिचित एवं अन्य लोगों तक पूज्यश्री के सत्संग एवं मार्गदर्शन का लाभ 'ऋषि प्रसाद' द्वारा पहुँचाने हेतु सभी सेवाधारी भाइयों को इस माह से उनके द्वारा बनाये गये १० वार्षिक सदस्यों पर अथवा १ आजीवन सदस्य पर १ वार्षिक सदस्यता उपहार दी जायेगी ।

पूर्व में घोषित अन्य सभी उपहार योजनाएँ इस माह से निरस्त की जाती हैं ।

'ऋषि प्रसाद' के पाठकगण, सदस्यों एवं एजेन्ट बन्धुओं से निवेदन

(१) 'ऋषि प्रसाद' के गतांकों में दी गई सूचना के अनुसार सर्वविदित है कि अप्रैल '९६ से 'ऋषि प्रसाद' की द्विमासिक सदस्यता योजना समाप्त कर दी गई है । अतः जो आजीवन सदस्य सिर्फ द्विमासिक पत्रिका ही प्राप्त कर रहे थे उनसे निवेदन है कि वे कृपया अतिरिक्त रू. २५० जमा करवाकर अपनी सदस्यता को मासिक आजीवन सदस्यता में परिवर्तित करवा लें ।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के पाठक इस अंक से रू. २०० जमा करवाकर पाँच साल के लिए भी सदस्य बन सकते हैं ।

(३) अपनी सदस्यता का नवीनीकरण कराते समय मनीऑर्डर फार्म पर 'संदेश के स्थान' पर 'ऋषि प्रसाद' के लिफाफे पर आया हुआ आपके पते वाला लेबल चिपका दें । (४) 'पाने वाले का पता' में 'ऋषि प्रसाद सदस्यता हेतु' अवश्य लिखें । (५) पते में किसी भी प्रकार के परिवर्तन की सूचना प्रकाशन तिथि से एक माह पूर्व भिजवावें अन्यथा परिवर्तन अगले अंक से प्रभावी होगा । (६) जिन सदस्यों को पोस्ट द्वारा अंक मिलता है उनको विनंती है कि अगर आपको अंक समय पर प्राप्त न हो तो पहले अपनी नजदीकवाली पोस्ट ऑफिस में ही पूछताछ करें । क्योंकि अहमदाबाद कार्यालय से सभी को समय पर ही अंक पोस्ट किये जाते हैं । पोस्ट ऑफिस में तलास करने पर भी अंक न मिले तो उस महीने की २० तारीख के बाद अहमदाबाद कार्यालय को जानकारी दें । (७) 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय से पत्रव्यवहार करते समय कार्यालय के पते के ऊपर के स्थान में संबंधित विभाग का नाम अवश्य लिखें । ये विभिन्न विभाग इस प्रकार हैं :

(A) अनुभव, गीत, कविता, भजन, संस्था समाचार, फोटोग्राफ्स एवं अन्य प्रकाशन योग्य सामग्री 'सम्पादक- ऋषि प्रसाद' के पते पर प्रेषित करें । **(B)** पत्रिका न मिलने तथा पते में परिवर्तन हेतु 'व्यवस्थापक-ऋषि प्रसाद' के पते पर संपर्क करें । **(C)** साहित्य, चूर्ण, कैसेट आदि प्राप्ति हेतु श्री योग वेदान्त सेवा समिति के पते पर संपर्क करें । **(D)** साधना संबंधी मार्गदर्शन हेतु 'साधक विभाग' पर लिखें । **(E)** स्थानीय समिति की मासिक रिपोर्ट, सत्प्रवृत्ति संचालन की जानकारी एवं समिति से संबंधित समस्त कार्यों के लिये 'अखिल भारतीय योग वेदान्त सेवा समिति' के पते पर लिखें । **(F)** स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त प्रकार के पत्रव्यवहार 'वैद्यराज, सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत (गुजरात) के पते पर करें । (८) आप जो राशि भेजें वह इन विभागों के मुताबिक अलग-अलग मनीऑर्डर या ड्राफ्ट से ही भेजें । अलग-अलग विभाग की राशि एक ही मनीऑर्डर या ड्राफ्ट में कभी न भेजें ।

रामजी की चिड़िया...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

एकबार आचार्य विनोबा भावे ने भूदान यज्ञ के समय में पदयात्रा शुरू की थी । प्रात:काल के समय सूरज निकलने की तैयारी थी और पक्षियों का मीठा कलरव सुनाई दे रहा था । किसी खेत में जुवार की फसल लहलहा रही थी और पक्षी मजे से जुवार चुग रहे थे ।

मार्ग में इस दृश्य को देखकर विनोबा भावे के हृदय में हुआ : 'किसान कितना आलसी है ! पक्षी जुवार चुग रहे हैं और वह अभी तक रखवाली करने नहीं आया है !' ऐसा सोचते हुए जैसे ही वे दो-चार कदम आगे बढ़े तो देखते हैं कि किसान एक स्थान पर बैठे-बैठे गा रहा था :

संत मिलन को जाइए तजि मोह अभिमान ।
ज्यों-ज्यों पग आगे धरे कोटि यज्ञ समान ॥

प्रात:काल के समय किसान को ये पंक्तियाँ गाते देखकर विनोबा भावे ने सोचा कि यह किसान तो साधु जैसा लगता है । अत: उन्होंने पास जाकर कहा :

''जय जय सीताराम !''

किसान : ''जय जय सीताराम, बाबाजी !''

विनोबा भावे : ''यह खेत तुम्हारा है ?''

किसान : ''नहीं, यह खेत मेरा नहीं है । यह खेत पहले दूसरे के नाम पर था, उसके पहले भी किसी दूसरे के नाम पर था, कुछ वर्षों के बाद किसी दूसरे के नाम पर होगा । यह खेत मेरा कैसे हो सकता है ?''

लोग कहते हैं : 'यह मेरा है... वह मेरा है...' लेकिन आज तक किसीका कुछ भी नहीं रहा है । यह समझ उस किसान को थी । एक साधारण किसान का इतना ऊँचा ज्ञान देखकर विनोबा भावे ने पुन: कहा :

''भैया ! यह खेत किसीका नहीं है यह बात तो ठीक है लेकिन व्यवहार के अनुसार तो प्रात:काल में आकर खेत की रखवाली करनी चाहिए न ! तुम यहाँ बैठकर भजन गा रहे हो और पक्षी आकर मजे से दाना चुग रहे हैं । यदि पक्षी सब दाना चुग गये तो तुम्हारे लिए क्या बचेगा ?''

किसान : ''पक्षी दाने चुग रहे हैं इसीलिए तो मैं मचान पर बैठा हूँ । वे बेचारे पूरी रात के भूखे होंगे । वे जुवार के दाने के भूखे हैं, उन्हें जुवार चुगने दो और मैं भक्ति का भूखा हूँ इसलिए मुझे भक्ति के गीत गाने दो । बाद में मैं उन्हें भगाऊँगा ।''

> *''पक्षी बेचारे जुवार के दाने के भूखे हैं, उन्हें जुवार चुगने दो और मैं भक्ति का भूखा हूँ इसीलिए मुझे भक्ति के गीत गाने दो ।''*

''क्या तुम रोज ऐसा ही करते हो ?''

''हाँ ! मैं रोज ऐसा ही करता हूँ और पक्षी भी ऐसा ही करते हैं ।''

''इस प्रकार रोज तुम्हारे कितने दाने कम हो जाते होंगे ?''

किसान : ''ये सब हिसाब करने की मुझे जरूरत नहीं है । जो परमात्मा मुट्ठीभर जुवार में से मनभर जुवार पैदा कर सकता है वही परमात्मा पक्षियों को भी चेतना देता है । पूरा हिसाब भी वही रखे, मैं क्यों हिसाब रखूँ ?''

रामजी की चिड़िया रामजी का खेत ।
खा ले मेरी चिड़िया तू भर भर पेट ॥

उस किसान को शायद संत तुकारामजी के जीवन की घटना का पता होगा ।

एक बार संत तुकारामजी ने किसीकी साझेदारी में खेत रखा था । फसल बोकर वे खेत की रखवाली कर रहे थे, तब उन्हें निश्चिंतता से बैठे देखकर

किसीने कहा : ''आपके खेत के सारे दाने तो पक्षी चुग रहे हैं ?''

यह सुनकर तुकारामजी ने कहा : **''रामजी की चिड़िया और रामजी का खेत ।''**

जिस व्यक्ति की साझेदारी में खेत था उस व्यक्ति को इस बात का पता चलते ही वह चिढ़ गया और सोचने लगा कि इस प्रकार पक्षियों को खिला देने से बत्तीस मन तो क्या, मनभर दाने भी हमारे हिस्से में नहीं आयेंगे । अतः वह सरपंच के पास गया और बोला :

''आप तुकाराम को दूसरा खेत दिलवा दीजिए और उसके पास से मेरा खेत मुझे वापस दिलवा दीजिए क्योंकि वह तो सारा दिन 'विट्ठल... विट्ठल...' ही जपता रहता है और खेत में तनिक भी ध्यान नहीं देता ।''

सरपंच : ''लेकिन तुकाराम ने खेत में फसल बो दिया है इसलिए उसके साथ मैं ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता । फिर भी मैं जाकर उसे समझाता हूँ कि वह खेत की देख-रेख अच्छी तरह करे ।''

बाद में सरपंच ने जाकर तुकाराम से कहा : ''तुम सारा दिन **'रामजी की चिड़िया और रामजी का खेत'** करके सब दाने पक्षियों को खिला देते हो तो फिर तुम्हारे दूसरे साझीदार को क्या दोगे ?''

तुकारामजी : ''मैं कम दाने लेकर उन्हें ज्यादा हिस्सा दूँगा ।''

सरपंच : ''लेकिन पक्षी सब दाने ही चुग जायेंगे तो फसल कैसे होगी और बिना अनाज पके तुम क्या दे सकोगे ?''

तुकारामजी : ''दूसरे हिस्सेदार जितने दाने देते थे उतने ही दाने मैं भी दूँगा ।''

तब सरपंच ने किसान से पूछा : ''दूसरे साझीदार तुम्हें कितने दाने देते थे ?''

किसान : ''बत्तीस मन ।''

तुकारामजी : ''मैं इन्हें तैंतीस मन दाने दूँगा ।''

सरपंच : ''ऐसा कैसे हो सकता है ?''

तुकारामजी : ''वह तो मेरा राम ही जाने जो पूरे ब्रह्माण्ड को सत्ता दे रहा है ।''

जब फसल के बँटवारे का समय आया तब बत्तीस की जगह तैंतीस मन दाने तुकारामजी ने उस किसान को दे दिये फिर उनके अपने हिस्से में पैंतीस मन दाने और बच गये क्योंकि तुकारामजी ने सच्चे हृदय से भगवान की भक्ति की थी ।

सिख धर्म के आदि गुरु नानकदेव जब छोटे थे तब वे किसी अनाज की दुकान में तौलने का काम करते थे । जब कोई अनाज लेने आता तब वे 'दस... ग्यारह... बारह... धड़ी तक तो ठीक से तौलते लेकिन जैसे ही तेरह की गिनती आती तो 'तेरा... तेरा... सब कुछ तेरा ही है' ऐसा करके गिनती भूल जाते । अतः किसीको कुछ लेना होता तो वह जान-बूझकर तेरह के आगे के तौल का अनाज खरीदता ताकि तेरा... तेरा... करते-करते दो-पाँच धड़ी अनाज ज्यादा मिल जाये ।

यह देखकर किसी व्यक्ति ने दुकान के मालिक के पास जाकर शिकायत कर दी : ''आपकी दुकान का आदमी नानक जब तेरह बोलने की बारी आती है तब 'तेरा... तेरा...' करके लोगों को ज्यादा अनाज दे देता है । इस तरह तो आपका दिवाला निकल जायेगा ।''

मालिक ने तुरंत दुकान में आकर किसी ग्राहक का अनाज दुबारा तुलवाया तो तौल बराबर था । इसी प्रकार दूसरे, तीसरे ग्राहक का अनाज भी दुबारा तुलवाने पर जब अनाज ठीक ही निकला तब मालिक नानकजी के पैरों पर गिर पड़ा और बोला : ''यह सब आपकी ही लीला है... मुझे क्षमा करें ।''

नानकजी : ''यह मेरी लीला नहीं है, वरन् जिसकी कृपा से एक पानी की बूँद में से कई नवाब पैदा हो-होकर लीन हो जाते हैं उस परमात्मा की यह लीला है । 'मेरा-तेरा' कुछ नहीं है लेकिन सब जिसका है और सब जिससे है वही परमात्मा एकमात्र सत्य है बाकी सब मिथ्या है ।''

''जिसकी कृपा से एक पानी की बूँद में से कई नवाब पैदा हो-होकर लीन हो जाते हैं उस परमात्मा की यह लीला है । सब जिसका है और सब जिससे है वही परमात्मा एकमात्र सत्य है बाकी सब मिथ्या है ।''

जहँ राम तहँ नहीं काम...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मन की पाँच अवस्थाएँ होती हैं : क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, एकाग्र और निरुद्ध । क्षिप्त, विक्षिप्त और मूढ़ ये आम मन की अवस्थाएँ हैं एवं एकाग्र और निरुद्ध ऊँचे मन की अवस्थाएँ हैं । भारत के ऋषि-मुनियों ने एकाग्र और निरुद्ध मन का अनुसंधान करके ही समाधिसुख पाया है, दिव्य सृष्टि का अनुभव एवं आत्मदेव का साक्षात्कार किया है जबकि आज के मनोवैज्ञानिकों ने केवल मानव मन की क्षिप्त, विक्षिप्त और मूढ़ इन अवस्थाओं पर ही ध्यान दिया है ।

भारत के ऋषि-मुनियों ने एकाग्र और निरुद्ध मन का अनुसंधान करके ही समाधिसुख पाया है, दिव्य सृष्टि का अनुभव एवं आत्मदेव का साक्षात्कार किया है जबकि आज के मनोवैज्ञानिकों ने केवल मानव मन की क्षिप्त, विक्षिप्त और मूढ़ इन अवस्थाओं पर ही ध्यान दिया है ।

इस प्रकार रुग्ण मन का अनुसंधान करके मनोवैज्ञानिकों ने अपने निष्कर्ष में संयम, ब्रह्मचर्य इत्यादि बातों को व्यर्थ बताकर सांसारिक काम-व्यवहार को सत्य साबित करना चाहा है । मनोवैज्ञानिकों की कल्पना 'संभोग से समाधि' को यदि हम सच मान लें तो क्या सांसारिक काम-चेष्टा में दिन-रात रत रहनेवाले सूअर, कबूतर, बकरियाँ आदि समाधि के आनंद में होते हैं ? क्या मनुष्य शादी करके, काम-विकार की मायाजाल में फँसकर दिव्य तत्त्व का साक्षात्कार करता है ? नहीं ।

जीव जब काम-विकार में लीन होता है तब शरीर से दुर्गंध निकलती है और जीव जब राम के रस में लीन होता है तब शरीर से दिव्य प्रकाश, दिव्य सुगंध निकलती है ।

जीवन में संयमरूपी 'ब्रेक' और विवेकरूपी 'लाल बत्ती' की खूब आवश्यकता है । संयम और विवेक से शादी करके बच्चों को जन्म देकर शास्त्रकथनानुसार जीवन बिताना ठीक है, अच्छा है किंतु खुद को तथा पत्नी को भोग की मशीन बनाकर स्वयं को रोगी बनाना कहाँ तक उचित है ?

तुलसीदासजी ने कहा है :

जहँ काम तहँ नहीं राम जहँ राम तहँ नहीं काम ।
तुलसी दोनों रह न सके रवि-रजनी एक ठाम ॥

रामायण में एक प्रसंग आता है : जब रावण श्रीरामचंद्रजी की सेना से परेशान हो गया तब आखिर में दूसरा कोई रास्ता न मिलने पर उसने अपने भाई कुंभकर्ण को नींद में से जगाया । इस अवसर पर कुंभकर्ण ने रावण से कहा :

''एक सीता के लिए तुम इतने सारे योद्धाओं को मरवा रहे हो एवं मेरी भी नींद बिगाड़ रहे हो ? तुम्हारे पास तो कितनी सारी कलाएँ हैं । कोई भी आजमा ली होती ?''

रावण : ''मुझे पागल कुत्ते ने नहीं काटा । मैं सब युक्तियाँ आजमाकर थक गया हूँ । तुम्हें नींद से जगाने पर तुम नाराज होते हो यह मैं जानता हूँ, किंतु मेरे भाई ! दूसरा कोई चारा भी तो नहीं था ।''

कुंभकर्ण : ''तुम्हारे पास तो रूप बदलने की कला है और सीता तुम्हारी ही अशोक वाटिका में है । तुम राम का रूप लेकर सीता के पास सरलता से पहुँच सकते थे ।''

रावण : ''मैं यह पापड़ भी बेलकर आया हूँ । मैं जब राम का रूप लेने के लिए

राम का चिंतन करता हूँ तब तेरी भाभी (पत्नी मंदोदरी) भी मुझे देवी जैसी लगती है तो फिर मैं सीता के पास कैसे जा सकता हूँ ?''

'राम' नाम इतना पवित्र है कि उसके चिंतनमात्र से रावण जैसे दुष्ट, पापी, अधम का हृदय भी परिवर्तित हो जाता है। राम नाम लेने से मोह, वासना आदि शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और हृदय में भगवद्भक्ति का संचार होने लगता है।

योगियों ने यही बात अपने ढंग से बतायी है। हमारे शरीर में सात मुख्य केन्द्र हैं। प्रथम केन्द्र को मूलाधार केन्द्र, काम-केन्द्र कहते हैं, जो शरीर की नींव बनानेवाला है। प्रारंभ के सात वर्ष तक मूलाधार केन्द्र का विकास होता है। मूलाधार केन्द्र के विकास के बाद ऊपर के केन्द्रों का विकास होता है। मनुष्य धीरे-धीरे ईश्वरीय दिव्यता का अनुभव करने लगता है। जब सहस्रार केन्द्र का विकास होता है तब राम की समाधि का सुख प्राप्त होता है। जीव जब काम-विकार में लीन होता है तब शरीर से दुर्गंध निकलती है और जीव जब राम के रस में लीन होता है तब शरीर से दिव्य प्रकाश, दिव्य सुगंध निकलती है।

ये तो हुई मन की अवस्थाएँ लेकिन जो तुम्हारे मन को देख रहा है वह साक्षी, चैतन्य, तुम्हारे रोम-रोम में रमनेवाला राम तुम्हारा आत्मा है। अगर उस रामतत्त्व को जान लिया तो फिर काम की क्या ताकत है कि तुम्हें विचलित कर सके... परेशान कर सके ?

❀

संतों की सहिष्णुता

सिंधी जगत के महान तपोनिष्ठ ब्रह्मज्ञानी संत श्री टेऊंरामजी ने जब अपने चारों ओर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों को हटाने का प्रयत्न किया, तब अनेकानेक लोग आत्मकल्याण के लिए सेवा में आने लगे। जो अब तक समाज के भोलेपन और अज्ञान का अनुचित लाभ उठा रहे थे, समाज का शोषण कर रहे थे, ऐसे असामाजिक तत्त्वों को तो यह बात पसन्द ही न आई। कुछ लोग डोरा, धागा, तावीज का धन्धा करनेवाले थे तो कुछ शराब, अंडा, माँस, मछली आदि खाने वाले थे तथा कुछ लोग ईश्वर पर विश्वास न करनेवाले एवं संतों की विलक्षण कृपा, करुणा व सामाजिक उत्थान के उनके दैवी कार्यों को न समझकर समाज में अपने को मान की जगह पर प्रतिष्ठित करने की इच्छावाले क्षुद्र लोग थे। वे संत की प्रसिद्धि और तेजस्विता नहीं सह सके। वे लोग विचित्र षड्यंत्र बनाने एवं येन केन प्रकारेण लोगों की आस्था संतजी पर से हटे ऐसे नुस्खे आजमाकर संत टेऊंरामजी के ऊपर कीचड़ उछालने लगे। उनको सताने में उन दुष्ट हतभागी पामरों ने जरा भी कोरकसर न छोड़ी। उनके आश्रम के पास मरे हुए कुत्ते, बिल्ली और नगरपालिका की गन्दगी फेंकी जाती थी। संतश्री एवं उनके समर्पित व भाग्यवान शिष्य चुपचाप सहन करते रहे और अन्धकार में टकराते हुए मनुष्यों को प्रकाश देने की आत्मप्रवृत्ति उन्होंने न छोड़ी।

संत कंवररामजी उस समय समाज-उत्थान के कार्यों में लगे हुए थे। हतभागी, कृतघ्न, पापपरायण एवं मनुष्यरूप में पशु बने हुए लोगों को उनकी लोक-कल्याणकारक उदात्त सत्प्रवृत्ति पसन्द न आई। फलतः उनकी रुफसु स्टेशन पर हत्या कर दी गई। फिर भी संत कंवररामजी महाराज महान संत के रूप में अभी भी पूजे जा रहे हैं। सिंधी जगत बड़े आदर के साथ आज भी उन्हें प्रणाम करता है लेकिन वे दुष्ट, पापी व मानवता के हत्यारे किस नरक में अपने नीच कृत्यों का फल भुगत रहे होंगे तथा कितनी बार गंदी नाली के कीड़े व मेढ़क बन लोगों का मल-मूत्र व विष्ठा खाकर सड़कों पर कुचले गये होंगे, पता नहीं। इस जगत के पामरजनों की यह कैसी विचित्र रीति है !

भूल सुधार

'ऋषि प्रसाद' नवम्बर '९६ अंक : ४७ में पृष्ठ नं. २१ में 'शरीर स्वास्थ्य' लेख में प्रथम कॉलम में दिया हुआ मंत्र कृपया इस प्रकार पढ़ें :

अयं मे हस्तो भगवा अयं मे भगवत्तरः।
अयं मे विश्वभेषजो यं शिवाभिमर्शन ॥

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

करो सेवा मिले मेवा...

बड़ौदा में गायकवाड़ का राज्य था । उनके कुल की महिला शांतादेवी स्वामी शांतानंदजी के दर्शन करने गयी । आश्रम में जाकर उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति गौशाला में सफाई कर रहा है । शांतादेवी ने उससे कहा :

''मुझे पूज्य गुरुदेव के दर्शन करने हैं ।''

उसने कहा : ''यहाँ कोई गुरुदेव नहीं रहते ।''

आगे जाकर उन्होंने किसी दूसरे से पूछा : ''स्वामी शांतानंदजी महाराज क्या इधर नहीं हैं ?''

वह बोला : ''इधर ही हैं । क्या आपने उन्हें गौशाला में नहीं देखा ?''

शांतादेवी : ''वे तो मना कर रहे हैं ?''

उसने कहा : ''गौशाला में सेवा करनेवाले स्वयं ही पूज्यपाद स्वामी शांतानंदजी महाराज हैं ।''

यह सुनकर वह पुन: गौशाला की ओर दौड़ी एवं प्रणाम करते हुए बोली : ''मुझे पता नहीं था कि आप ही पूज्यपाद गुरुदेव हैं और गौशाला में इतनी मेहनत कर रहे हैं ।''

स्वामी शांतानंद : ''तो क्या साधु या संन्यासी वेश परिश्रम से इन्कार करता है ?''

''आज मैं आपके दर्शन करने एवं सत्संग सुनने के लिए आयी हूँ ।''

''अच्छा ! सत्संग सुनना है तो सेवा कर । ले यह लकड़ी का टुकड़ा और मिट्टी का तेल । इन छोटे-छोटे बछड़ों के खुरों में कीड़े पड़ गये हैं । उन्हें लकड़ी से साफ करके मिट्टी का तेल डाल ।''

शांतादेवी ने बड़े प्रेम से बछड़ों के पैर साफ किये और हाथ-पैर धोकर स्वामी शांतानंदजी के चरणों में सत्संग सुनने जा बैठी । उनके दो वचन सुनकर शांतादेवी ने कहा : ''महाराज ! आज सत्संग से मुझे जो शांति मिली है, जो लाभ मिला है ऐसा लाभ, ऐसी शांति जीवन में कभी नहीं मिली ।''

स्वामी शांतानंदजी : ''आज तक तूने मुफ्त में सत्संग सुना था । आज कुछ देकर फिर पाया है, इसलिए आनंद आ रहा है ।''

गुरु तो अपना पूरा खजाना लुटाना चाहते हैं किन्तु...

> *''आज तक तूने मुफ्त में सत्संग सुना था । आज कुछ देकर फिर सुना है, इसलिए आनंद आ रहा है ।''*

शिष्य को चाहिए कि तत्परता से सेवा करके अपना भाग्य बना ले तो वह दिन दूर नहीं, जब वह गुरु के पूरे खजाने को पाने का अधिकारी हो जायेगा । सत्संग के साथ-साथ यदि साधक के जीवन में सेवा का समन्वय भी हो तो फिर उतने परिश्रम की आवश्यकता भी नहीं होती । सेवा से अन्त:करण शुद्ध होता है और शुद्ध अन्त:करण में परमात्मा का प्रकाश शीघ्र होता है ।

❀

कर्मों का फल

एक बार देवर्षि नारद अपने शिष्य तुम्बरू के साथ कहीं जा रहे थे । गर्मियों के दिन थे । एक प्याऊ से उन्होंने पानी पिया और पीपल के पेड़ की छाया में जा बैठे । इतने में एक कसाई वहाँ से पच्चीस-तीस बकरों को लेकर गुजरा । उसमें से एक बकरा एक दुकान पर चढ़कर मठ खाने लपक पड़ा । उस दुकान पर नाम लिखा था 'शगालचन्द सेठ ।' दुकानदार का ध्यान जाते ही उसने बकरे के कान पकड़कर दो-चार घूँसे मार दिये । बकरा ' बैंऽऽऽ बैंऽऽऽ' करने लगा और उसके मुँह से सारे मठ गिर पड़े ।

देवर्षि नारद ने जरा-सा ध्यान लगाकर देखा और जोर से हँस पड़े । तुम्बरू पूछने लगा : ''गुरुजी ! आप क्यों हँसे ? उस बकरे को जब घूँसे पड़ रहे थे तब तो आप दुःखी हो गये थे किन्तु ध्यान करने के बाद आप हँस पड़े । इसमें क्या रहस्य है ?''

नारदजी ने कहा : ''छोड़ो भी... यह तो सब कर्मों का फल है, छोड़ो ।''

तुम्बरू : ''नहीं, गुरुजी ! कृपा करके बताइये ।''

नारदजी कहते हैं : ''इस दुकान पर जो नाम लिखा है 'शगालचंद सेठ' वह शगालचंद सेठ स्वयं बकरा होकर आया है । यह दुकानदार शगालचंद सेठ का ही पुत्र है । शगालचंद सेठ मरकर बकरा हुआ है और अपना पुराना संबंध समझकर दुकान पर मठ खाने गया । उसके बेटे ने ही उसको मारकर भगा दिया । मैंने देखा कि बीस बकरों में से कोई नहीं गया और यह क्यों गया कमबख्त ? इसलिये ध्यान करके देखा तो पता चला कि इसका पुराना संबंध था ।''

पुत्र ने तो बकरे के कान पकड़कर घूँसे जमा दिये और कसाई को बकरा पकड़ाते हुए कहा : ''जब इस बकरे को तू हलाल करे तो मुण्डी मेरे को देना क्योंकि यह मेरे मठ खा गया है ।''

जिस बेटे के लिए शगालचंद ने इतना कमाया था, वही बेटा मठ के चार दाने भी नहीं खाने देता और गलती से खा लिया है तो मुण्डी माँग रहा है बाप की । इसलिए कर्म की गति और मनुष्य के मोह पर मुझे हँसी आ रही है कि अपने-अपने कर्मों का फल तो प्रत्येक प्राणी को भुगतना ही पड़ता है और इस जन्म के रिश्ते-नाते मृत्यु के साथ ही मिट जाते हैं, कोई काम नहीं आता ।

नव वर्ष १९९७ का वॉल केलेन्डर

हर वर्ष की तरह इस बार भी पूज्यश्री के मनभावन रंगीन फोटो एवं पावन संदेश के साथ वॉल केलेन्डर तैयार हो गया है । जिनको थोक ऑडर देना हो उन्हें कंपनी का नाम इत्यादि छाप दिया जायेगा । कमसे कम २५० केलेन्डर का ऑडर जरूरी है । संपर्क : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-५. फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

वार्षिक बैठक

पू. बापू के सान्निध्य में सभी समितियों के सिर्फ पदाधिकारियों की वार्षिक बैठक उत्तरायण शिविर के पश्चात् दिनांक : १६-१-९७ गुरुवार को अहमदाबाद आश्रम में रखी गई है । अतएव सभी योग वेदान्त सेवा समितियों के प्रमुख/अध्यक्ष, उपप्रमुख/उपाध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष में से कोई दो पदाधिकारी इस वार्षिक बैठक में भाग लेने हेतु आमंत्रित हैं । बैठक में भाग लेने हेतु प्रवेशपत्र समिति मुख्यालय से बैठक से एक दिन पूर्व प्राप्त होंगे ।

नकली कैसेट से सावधान

पूज्यश्री की अमृतवाणी से ओत-प्रोत 'मधुर कीर्तन' एवं सत्संग की ऑडियो कैसेट की बढ़ती लोकप्रियता व माँग को देखकर कुछ स्वार्थी तत्त्वों द्वारा नकली ऑडियो कैसेट्स भरी जा रही हैं । यह डुप्लीकेट कैसेटस् निम्न गुणवत्ता की कैसेट पर चालू कैसेट द्वारा भरी होने के कारण इनमें आवाज व ध्वनि निम्न श्रेणी की होती है और शीघ्र ही खराब हो जाती है । साथ ही अक्सर यह अधिक मूल्य पर भी बेची जाती है । अतः विभिन्न श्री योग वेदान्त सेवा समितियों का यह पुनीत दायित्व है कि वे अपने क्षेत्र की धर्मप्रेमी जनता को क्षेत्रीय समाचार पत्रों व अन्य माध्यमों से इस विषय में समय-समय पर आगाह करते रहें एवं सही ओरिजनल ऑडियो कैसेटस् हर क्षेत्र में आसानी से उपलब्ध हो उसकी व्यवस्था के साथ-साथ इनके मिलने के पतों का भी प्रचार करें ।

लोगों को सही कैसेट मिले इस हेतु से आश्रम द्वारा भी कैसेटस् विक्रेताओं के लिए एक योजना चालू की गई है जिसमें १०० कैसेटस् लेनेवाले को २० कैसेटस् उपहार अथवा कमिशनरूप में दी जाएगी । समितियाँ इस योजना को अपने क्षेत्र में कार्यान्वित करने के लिये कैसेट विक्रेताओं को एजेन्ट बनाकर इसका व्यापक प्रचार-प्रसार कर सकती हैं ।

अलख पुरुष की आरसी

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

क़बीरजी से किसीने कहा :

''हम निर्गुण, निराकार परमात्मा को तो देख नहीं पाते । फिर भी देखे बिना रह न जायें, ऐसा कोई उपाय बताइये ।''

कबीरजी ने कहा : ''परमात्मा को देखने के लिए यह चमड़े की आँखें काम नहीं आतीं । इसलिए इन आँखों से तो परमात्मा नहीं दिखेगा । परन्तु यदि तुम देखना ही चाहते हो तो जिनके हृदय में आत्मस्वरूपाकार वृत्ति प्रगट हुई है, जिनके हृदय में समतारूपी परमात्मा प्रगट हुआ है, अद्वैत ज्ञानरूपी परमात्मा प्रगट हुआ है ऐसे हृदयवाले किसी पुरुष को तुम देख सकते हो। जिन्हें देखकर तुम्हें परमात्मा याद आ जायें, जिन दिलों में ईश्वर निरावरण हुआ है, उन संतों-महापुरुषों को देख सकते हो ।''

> *साधु का देह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें तुम उस अलख पुरुष परमात्मा का दर्शन कर सकते हो ।*

> *जो संतों का आदर, पूजन, सेवा करता है वह अपना भाग्य बना लेता है, उनके दैवी अनुभव में भागीदार हो जाता है और जो उनकी निंदा करता है, उनको सताता है वह अपने भाग्य को ठुकराता है, आत्मघात करता है ।*

अलख पुरुष की आरसी साधु का ही देह ।
लखा जो चाहे अलख को इन्हीं में तू लख ले ॥

साधु का देह एक ऐसा दर्पण है, जिसमें तुम उस अलख पुरुष परमात्मा का दर्शन कर सकते हो । इसलिए अलख पुरुष को देखना चाहते हो तो ऐसे किसी परमात्मा के प्यारे संतों का दर्शन करना चाहिए ।

शुद्ध हृदय से, ईमानदारी से उन महापुरुषों के गुणों का चिंतन करके हृदय को धन्यवाद से भरते जाओगे तो तुम्हारे हृदय में उस परमात्मा को प्रगट होने में देर न लगेगी । परमात्मा को पाना इतना सरल होते हुए भी लोग इसका फायदा तो ले नहीं पाते वरन् उनका बाह्य व्यवहार देखकर अपनी क्षुद्र मति से उनको नापते रहते हैं और अपना ही नुकसान करते हैं ।

वशिष्ठजी इस विषय में कहते हैं : ''संतों के गुण-दोष मत विचारिये परन्तु कैसे भी करके उनसे ज्ञान ले लेना चाहिए ।

हे रामजी ! मैं बाजार से गुजरता हूँ तो मूर्ख लोग मेरे लिए क्या क्या कहते हैं मुझे सब पता है लेकिन मेरा दयालु स्वभाव है कि कैसे भी करके उन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान मिल जाये ।''

अयोध्या नरेश दशरथ जिनके चरणों में अपना सिर झुकाकर अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं और श्रीराम जिनके शिष्य हैं, ऐसे गुरु वशिष्ठ को भी कहनेवालों ने क्या-क्या नहीं कहा होगा ? तो तुम्हारे लिए भी कोई कुछ कह दे तो चिंता मत करना, वरन् उसे दुआएँ देना ।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भारत का राष्ट्रपतिपद ग्रहण किया तब किसी विकृत मनवाले ने एक सस्ती अख़बार में उनके बारे में छापना शुरू कर दिया कि 'ये तो ऐसे हैं... वैसे हैं...' आदि । जो कुछ कचरा अपने दिमाग से निकलता था उसे कलम के द्वारा अखबार में छापता था और कोई लेना नहीं चाहता तो उसे जबरदस्ती अखबार पकड़ा देता था ।

डॉ. राजेन्द्रबाबू के किसी चाहक ने वह अखबार राजेन्द्रबाबू को बताया तब उन्होंने वह फाड़कर फेंक दिया । दूसरा कोई लेकर आया तो उस अखबार को

कचरापेटी में डाल दिया । कुछ दिनों तक तो ऐसा चलता रहा । आखिर किसीने कहा : ''यह आप जैसे व्यक्ति के लिए इतना-इतना लिख रहा है और आप कुछ करते तक नहीं ! अब तो आप राष्ट्रपति हैं । आपके पास क्या नहीं है ? अब आप चाहें तो उसके खिलाफ चाहे जो कर सकते हैं । आप उसे कुछ तो कहें, कुछ तो समझाएँ । नहीं समझे तो डाँटें, पर कुछ तो करें ।''

सच्चाई फैलाने में तो जीवन पूरा हो जाता है परन्तु कुछ गड़बड़ फैलाना है तो फटाफट फैल जाती है ।

राजेन्द्रबाबू मुस्कुराये और कहा : ''मेरी बराबरी का होता तो मैं उसे जवाब देता । पर मुझे पता है कि वह मेरे लायक नहीं है । मैं उसे जवाब क्यों दूँ ? जो विकृत मनवाले होते हैं, उनको शत्रुओं की कमी नहीं होती । कभी उनकी मति ही ऐसी हो जायेगी कि उन्हें दूसरा कोई शत्रु मिल जायेगा और वे आपस में ही लड़-मरेंगे । लोहे से लोहा कट जाएगा ।''

लोगों ने पुन: कहा : ''परन्तु उसने इतना बढ़ा-चढ़ाकर आपके विरुद्ध लिखा है अत: आप कुछ तो जवाब दें ।''

राजेन्द्रबाबू : ''उसकी कोई जरूरत नहीं है ।''

ऐसा कई संतों के साथ होता है । जब तक सब ठीक लगता है, तब तक तो संत के साथ होते हैं, अपने को संत का भक्त कहलाते हैं । किन्तु जरा-सी कुछ गड़बड़ लगी कि खिसक जाते हैं । ऐसे लोग सुविधा के भक्त होते हैं, संत के भक्त नहीं होते ।

वह आदमी अपने-आप पोस्टकार्ड में कुछ-का-कुछ लिखकर पत्र पेटी में डाल देता था फिर अखबार में छाप देता था कि 'राजेन्द्रबाबू के फलाने आदमी का ऐसा पत्र आया है । मुझे भी धमकी दी गई है ।'

अरे भाई ! अगर ऐसे आदमी की धमकी आई है तो तू इतनी निश्चिंतता से घूम कैसे सकता है ? ऐसे लोग अपनी हल्की मति से दूसरों को सताकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं । राजेन्द्रबाबू पर इसका कोई असर नहीं पड़ा लेकिन उनके परिचित और मित्र तो परेशान हो गये ।

वे कहने लगे : ''हम आपके पास आते-जाते हैं और आपकी बदनामी हो रही है तो हमारे रिश्ते-नातों पर भी उसका असर पड़ रहा है । हमें लोग ऐसा-वैसा सुनाते हैं अत: आपको कुछ तो करना ही चाहिए ।''

तब राजेन्द्रबाबू ने एक दृष्टांत सुनाया : ''एक हाथी जा रहा था । उसके पीछे कुत्ते भौंकने लगे किन्तु हाथी अपनी ही मस्ती में चलता रहा । हाथी अगर कुत्तों को समझाने, डाँटने या चुप कराने लगे तो इसका मतलब यह है कि वह कुत्तों की बराबरी कर रहा है, वह अपनी मस्ती भूल गया है, अपनी गरिमा भूल गया है लेकिन हाथी की महिमा अपने ढंग की है । हाथी से हाथी टकरा जाये तो बात अलग है ।'' कबीरजी ने कहा हैं :

हाथी चलत है अपनी चाल में ।
कुतिया भौंके वा को भौंकन दे ।
मन तू राम सुमिर जग लड़ने दे ॥

ऐसे ही अपनी महिमा में मस्त रहनेवाले संतों-महापुरुषों पर लोगों की अच्छी बुरी बातों का कोई असर नहीं पड़ता है, परन्तु जो संतों का आदर, पूजन, सेवा करता है वह अपना भाग्य बना लेता है, उनके दैवी अनुभव में भागीदार हो जाता है और जो उनकी निंदा करता है, उनको सताता है, वह अपने भाग्य को ठुकराता है, आत्मघात करता है । संतों की नजर में कोई अच्छा कोई बुरा, कोई काला-गोरा, माई अथवा भाई ऐसा नहीं होता है । संतों की नजर में तो बस, केवल वही होता है ।

एकमेवाद्वितीयोऽहम् ।

जिसकी जैसी भावना, जिसकी जैसी दृष्टि और जिसका जैसा प्रेम, वैसा ही उसको लाभ या हानि होती है ।

करनी आपो आपणी के नेड़े के दूर ।

अपनी ही करनी से, अपने ही भावों से आप अपने को गुरु के, संत के नजदीक अनुभव करते हो और अपने ही भावों से दूरी का अनुभव करते हो । संत के हृदय में अपना-पराया कुछ नहीं होता है लेकिन आजकल का कलियुग का, अल्प मतिवाला आदमी गलत बात तो बहुत जल्दी स्वीकार कर लेगा, अच्छी बात को स्वीकार नहीं करेगा । सच्चाई फैलाने में तो जीवन पूरा हो जाता है परन्तु कुछ गड़बड़ फैलाना है तो फटाफट फैल जाती है । लोग तुरन्त कुप्रचार के शिकार बन जाते हैं क्योंकि वे अल्प मतिवाले हैं । उनकी विचारशक्ति कुंठित हो गई है ।

सच्चे संतों का आदर-पूजन जिनसे नहीं सहा गया, ऐसे ईर्ष्यालु लोगों ने ही जोर-शोर से कुप्रचार किया है ।

नरसिंह मेहता गुजरात के प्रसिद्ध संत हो चुके हैं । उनके लिए भी ईर्ष्यालु लोगों ने कई बार गड़बड़ फैलाई थी । गलत बातों का खूब प्रचार किया था लेकिन गड़बड़ी फैलानेवाले कौन-से नर्क में गये होंगे, किस माता के गर्भ में लटकते होंगे यह हम और तुम नहीं जानते परन्तु नरसिंह मेहता को तो आज भी सभी लोग जानते हैं, आदर से उनका नाम लेते हैं ।

धन्य हैं वे शिष्य, जो अलख पुरुष की आरसी स्वरूप ब्रह्मवेत्ता संतों को श्रद्धा-भक्ति से देखते हैं और उनसे आखिरी तक निभा पाते हैं ।

नरसिंह मेहता श्रीकृष्ण के भक्त थे । वे प्रभु-पद गाते-गाते इतने भावविभोर हो जाते थे कि अपने-आपको भूल जाते थे । नरसिंह मेहता जब नरसिंहपना भूल जाते थे तो श्रीकृष्ण अपना श्रीकृष्णपना कैसे रख सकते हैं ? देव अपना देवपना कैसे रख सकते हैं ? जब पुत्र अपना पुत्रपना भूलकर पिता के साथ बातें करने लग जाता है तो पिता भी पिताभाव कैसे रखेगा ? पिता भी पुत्र के साथ तोतली भाषा बोलने लग जाता है ।

नरसिंह मेहता श्रीकृष्ण का चिंतन करते-करते इतने तन्मय हो जाते थे कि जो लोग उनके दर्शन करने के लिए आते थे वे धन्य-धन्य हो जाते थे, कृतार्थ हो जाते थे । वे लोग भी नरसिंह मेहता के साथ नाच लेते थे, झूम लेते थे, कृष्ण-कन्हैया के भाव में आ जाते थे ।

ऐसे नरसिंह मेहता के बारे में जब अफवाएँ फैलाई गई तब ऐसे भक्तों की मति भी कुप्रचार के कारण डावाँडोल हो गयी और कुछ लोग तो अफवाओं का शिकार बनकर वहाँ से खिसक गये । वे कहने लगे कि नरसिंह मेहता में सच्चाई हो तो साबित करके दिखायें ।

हर वक्त नरसिंह मेहता के लिए फैलाई गई अफवाएँ गलत साबित हुई । जब लोगों को पता चला कि नरसिंह मेहता की दृढ़ भक्ति के कारण चमत्कार होते हैं, तो चमत्कार के प्यारे उनके आसपास इकट्ठे होते रहते थे लेकिन वे चमत्कार के भक्त थे । वे नरसिंह मेहता के भक्त नहीं थे ।

ऐसा कई संतों के साथ होता है । जब तक सब ठीक लगता है, तब तक तो संत के साथ होते हैं, अपने को संत का भक्त कहलाते हैं । किन्तु जरा-सी कुछ गड़बड़ लगी कि खिसक जाते हैं । ऐसे लोग सुविधा के भक्त होते हैं, संत के भक्त नहीं होते ।

संत का भक्त वही है कि कितनी भी विपरीत परिस्थिति आ जाए किन्तु उसका भक्ति-भाव नहीं छूटता । सुविधा के भक्त तो कब उलझ जाएँ, कब भाग जाएँ पता नहीं । जो निःस्वार्थ भक्त होते हैं वे अडिग रहते हैं, कभी फरियाद नहीं करते । वे तो संत का दर्शन, सत्संग और उनकी महिमा का गुणगान करते कभी थकते नहीं । किन्तु संत का संतत्व इन सबसे परे है । किसीकी निंदा या विरोध से उन्हें कोई हानि नहीं होती और किसीके द्वारा प्रशंसा करने से वे बड़े नहीं हो जाते ।

सच्चे संतों का आदर-पूजन जिनसे नहीं सहा गया, ऐसे ईर्ष्यालु लोगों ने ही जोर-शोर से कुप्रचार किया है । संतों के व्यवहार को पाखंड बताकर उन्होंने ही धर्म के प्रचार का ठेका उठाया है । धर्म का ठेका लेकर, धर्म की जय करनेवालों को पता ही नहीं

पूज्य बापु का हरियाणा सरकार की ओर से स्वागत करने... दौडे दौडे आये उद्योगमंत्री श्री किशनदास।

लुधियाना समिति का भगीरथ प्रयास - ये सत्संग किसी मैदान में नहीं... ये बैठे हैं भक्त - संत श्री आसारामजी आश्रम लुधियाना में।

वनांचलो में बसे आदिवासियों में सत्संगामृत व भोजन, वस्त्र, कम्बल आदि का वितरण। साथ ही बालयोगी श्री नारायण स्वामी दक्षिणा देते हुए।

ब्रह्मविद्या के मर्मज्ञ पूज्य बापूजी ने कहा : *"प्रत्येक मनुष्य अपनी भावना, निष्ठा व रुचि के अनुसार जगत को देखता है । जैसे, दुराचारी को बदमाशी का धंधा अच्छा लगता है परन्तु सज्जन को वही काम करने में बुरा लगता है । हम अपनी भावना, संस्कार, रुचि को जितना उन्नत बनायेंगे हम उतने ही ऊँचे उठेंगे ।"*

दिनांक : ७ दिसम्बर को विद्यार्थियों के लिये आयोजित विशेष सत्र में एक महान् शिक्षक की भाँति हजारों स्कूली छात्र-छात्राओं को जीवन में उद्यम, साहस धैर्य, बुद्धि, शक्ति एवं पराक्रम को अपनाने पर बल देते हुए पूज्यश्री ने कहा : *"ये छः सद्‌गुण जिसके जीवन में आ जाते हैं वे सफलता की ऊँचाइयों को छू लेते हैं ।"* माहौल पूरी तरह एक स्कूली कक्षा की तरह था किन्तु फर्क इतना था कि किसी भी स्कूल की कक्षा के मुकाबले अनेक स्कूलों के छात्र-छात्राओं को एक अकेले अध्यापक के रूप में पूज्यश्री उत्तम शिक्षा का दान दे रहे थे। देश के इन भावी कर्णधारों को आध्यात्मिक शिक्षा देते समय उनसे बीच-बीच में प्रश्न करना, उनकी जिज्ञासाएँ शांत करना, यह सब कुछ अद्‌भुत और वहाँ उपस्थित सभी श्रद्धालुओं के लिये अविस्मरणीय बन गया । इस प्रसंग को देखते ही बनता था कि हरियाणा के मुख्यमंत्री बंशीलाल के भाई व उनकी सुपुत्री डॉ. सुमित्रा ने भी श्रोताओं के बीच बैठकर पूज्यश्री के दिव्य वचनामृतों का लाभ लिया । पूज्यश्री ८ दिसम्बर को दिल्ली के लिए रवाना हुए

जोधपुर : दिनांक : ९ दिसम्बर को पूज्य बापूजी दिल्ली से वायुयान द्वारा शाम को जोधपुर पहुँचे । जोधपुर हवाई अड्डे पर श्री योग वेदान्त सेवा समिति व विद्यायक राजेन्द्र गहेलोत, नगर पार्षद गणपत सालेचा व गणमान्य नागरिकों ने पूज्यश्री का स्वागत किया । तत्पश्चात् पूज्य बापूजी पाल गाँव में स्थित आश्रम में पहुँचे ।

दिनांक : ११ से १५ दिसम्बर तक गांधी मैदान स्थित गोकुलधाम में आयोजित गीता भागवत सत्संग समारोह में राष्ट्रसंत पूज्य बापूजी के सुप्रवचनों को श्रवण करने के लिए विशाल जनसमुदाय उमड़ पड़ा । सत्संग के अन्तिम दिन तो मैदान में पैर रखने तक की जगह न बची थी ।

आत्मारामी संत ने कहा : *"चाय, दाल, पैसा बिगड़ जाय तो कोई बात नहीं लेकिन दिल को न बिगाड़ना क्योंकि दिल में दिलबर स्वयं रहता है ।"*

पूज्यश्री ने दुर्व्यसनों से होनेवाली हानि पर प्रकाश डालते हुए कहा : *"गुटखा, बीड़ी, सिगरेट आदि मनुष्य की उम्र कम कर देते हैं व मुँह का केन्सर, अन्ननली में घाव आदि भयंकर बीमारियाँ शरीर में घर कर जाती हैं ।"* उन्होंने कहा : *"आपका मुँह भगवान का निवास-स्थान है । इसे कचरे का डिब्बा न बनायें ।"*

इसी समय पूज्य बापूजी के वचनामृतों व शंखनाद से प्रेरित होकर हजारों लोगों ने अपने दोनों हाथ ऊँचे करके गुटखा, बीड़ी, सिगरेट आदि दुर्व्यसनों को छोड़ने का संकल्प किया । लाखों-लाखों हृदय इस सत्संग की अमिट छाप से आनन्दित हुए... ईश्वर के रास्ते अग्रसर होने को उत्साहित हुए ।

पू. बापू के सत्संग कार्यक्रम

(१) आणंद (गुज.) में युवा जागृति सत्संग समारोह दिनांक : २ से ५ जनवरी '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ३ से ५. स्थान : दादाभाई नवरोजी हाईस्कूल मैदान । फोन : २०१०९, २१७१२, २३१९४.

(२) अहमदाबाद में उत्तरायण का वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर : दिनांक : १२ से १५ जनवरी '९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद-५. फोन : ७४८६३१०, ७४८६७०२.

(३) बड़ेसरा (जि. पंचमहाल, गुज.) में : दिनांक : २० जनवरी '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. दोपहर २-३० से ४-३०. कैलासधाम, बड़ेसरा (खानपुर विभाग). फोन : (०२६७४) २५५५१.

(४) लुणावाड़ा (जि. पंचमहाल, गुज.) में : दिनांक : २० जनवरी शाम से २३ जनवरी '९७. सुबह ९-३० से ११-३० शाम ३-३० से ५-३०. मुक्तिधाम, खेतीवाड़ी फार्म, वरधरी रोड़, लुणावाड़ा । फोन : (०२६७४) २१०४९, २०५२७, २१०८३.

(५) डुंगरपुर (राज.) में : २५ और २६ जनवरी '९७. फोन : (०२९६४) ३०९३९, २७२४.

बल व आध्यात्मिक बल बढ़ाने की अनेकों युक्तियाँ बतायीं । उपस्थित दस हजार छात्र-छात्राओं को सत्साहित्य व प्रसाद वितरण किया गया ।

सत्संग के अन्तिम दिन श्रोताओं के बीच ही सादगी-पूर्वक बैठी व शान्त चित्त से सत्संगामृत का रसास्वादन करती पंजाब की मुख्यमंत्री श्रीमती राजेन्द्र कौर भट्ठल की तरफ इशारा करते हुए पूज्यश्री ने कहा : *"आप अपने सत्कृत्यों से पंजाब को तो छलोछल करो ही साथ ही अपने दिल को भी सत्संग से छलोछल करो ।"* संतप्रवर ने आगे कहा : *"जो लोगों द्वारा चुने जाने के बाद लोगों के बीच ही आकर सत्संग में बैठ जाते हैं उनका स्थान भी संतों के हृदय में हो जाता है ।"*

श्रीमती भट्ठल ने पांडाल में उपस्थित भक्त समुदाय को कहा : *"आज का दिन बड़ा महान् है कि मुख्यमंत्री बनने के बाद पहले ही दिन मुझे बाबाजी के चरणों में सिर झुकाने का मौका मिला है ।"*

दिनांक : २८ नवम्बर को सत्संग की पूर्णाहुति के बाद पूज्य बापूजी लुधियाना के लिये रवाना हुए ।

लुधियाना : दिनांक : २८ नवम्बर की शाम को आदमपुर (पंजाब) में उपस्थित श्रद्धालुजनों को सत्संगामृत का रसास्वादन कराकर पूज्यश्री लुधियाना में नवनिर्मित संत श्री आसारामजी आश्रम में पहुँचे । दूसरे दिन देश के कोने-कोने से आये हजारों पूनम व्रतधारियों व हजारों भाविक भक्तजनों को अपनी भक्ति, योग, वेदान्तरूपी ज्ञानामृत वर्षा में सराबोर कर दिया । भक्तजनों से खचाखच भरे आश्रम को देखते हुए लगता था कि पूज्यश्री की एक झलक पाने को मानो पूरा लुधियाना शहर ही उमड़ पड़ा है ।

दिनांक : २५ नवम्बर की शाम को ही पूज्य बापूजी ने करनाल के लिये प्रस्थान किया ।

करनाल : दिनांक : २७ नवम्बर से १ दिसम्बर तक हुडा मैदान में आयोजित पाँच दिवसीय गीता-भागवत सत्संग समारोह में उमड़े भक्तसमुदाय को अपनी पीयूषवाणी में अवगाहन कराते हुए ब्रह्मविद्या के ज्योतिर्धर पूज्य बापूजी ने कहा : *"दो प्रकार के कर्त्तव्य होते हैं : एक सांसारिक और दूसरा ईश्वरीय । जो मनुष्य ईश्वरीय कर्त्तव्य की अवहेलना करके सांसारिक कर्त्तव्य को महत्त्व देते हैं वे संसार की चक्की में पिसते ही रहते हैं ।"*

दिनांक : २९ नवम्बर को विद्यार्थियों के लिये आयोजित विशेष सत्र में करनाल के ९७ स्कूलों के २० हजार विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए पू. बापूजी ने कहा : *"अपने जीवन में नकारात्मक विचारों को स्थान न दें । ऐसे विचार करें जो कि हमारी आत्मिक उन्नति में सहायक बनें ।"*

पूज्यश्री सत्संग के अन्तिम दिन करनाल के केन्द्रीय कारागार में पधारे जहाँ लगभग ५०० कैदियों को पूज्यश्री की अमृतवाणी का लाभ मिला, साथ ही उनमें सत्साहित्य व प्रसाद आदि वितरण किया गया । पूज्य बापूजी के सान्निध्य व सत्संग-प्रवचन से कैदियों के दिलो-दिमाग में छायी ईर्ष्या-द्वेषरूपी कालिमा साफ होती नजर आ रही थी । सत्संग की पूर्णाहुति उपरान्त पूज्य बापूजी हिसार के लिये रवाना हुए ।

हिसार : दिनांक : ४ से ८ दिसम्बर तक पुलिस लाइन मैदान में आयोजित दिव्य सत्संग समारोह में हजारों-हजारों श्रद्धालु भक्तजनों ने पूज्यश्री के मुखारविन्द से प्रस्फुरित दिव्य वचनामृतों का लाभ लिया । सत्संग शुभारम्भ के समय स्वागत गीत व स्थानीय विधायक ओमप्रकाश महाजन, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक मानसिंह मान, जिला सत्र न्यायाधीश श्री बजाज तथा प्रतिष्ठित नागरिकों ने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया ।

केन्द्रीय कारागार में हो रहे पूज्यश्री के सत्संग का सीधा प्रसारण केबल टी. वी. के माध्यम से पूरे हिसार शहर में हो रहा था जिसमें लगभग १००० कैदियों को सम्बोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा : *"तीन प्रकार की जेल होती है : एक तो माँ के गर्भरूपी जेल होती है जिसे आप हम सभी भोगकर आये हैं । दूसरी यह सामाजिक जेल व तीसरी है नरकरूपी जेल ।"* पूज्यश्री ने उनको आगे कहा : *"आप धनभागी हैं कि नरकरूपी जेल में आपको कर्मों का फल न भुगतना पड़े अतः यहीं इसी जेल में तुम्हारे कर्म कट रहे हैं ।"*

संस्था समाचार

फजिल्का : दिनांक :१३ नवम्बर को दिल्ली से प्रस्थान करने के बाद पूज्यश्री शाम को अबोहर रेलवे स्टेशन पर उतरे। राज्यसभा सदस्य वीरेन्द्र कटारिया, फजिल्का क्षेत्र के विधायक डॉ. महेन्द्र कुमार रिणवा, नगर परिषद फजिल्का के अध्यक्ष केवलकृष्ण कामरा एवं नगर परिषद अबोहर के अध्यक्ष मनोहरलाल नागपाल, नगर के प्रतिष्ठित नागरिकों व हजारों श्रद्धालुजनों ने लाखों-लाखों लोगों के दिलों की धड़कन स्वरूप, करोड़ों लोगों के हृदयसम्राट पूज्य बापूजी का फूलमालाओं द्वारा स्वागत किया। तत्पश्चात् पूज्यश्री अबोहर से फजिल्का के लिये रवाना हुए ।

दिनांक : १४ से १७ नवम्बर तक सरकारी सिनियर सेकंडरी स्कूल के मैदान में आयोजित दिव्य सत्संग समारोह में फजिल्का निवासी व दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये श्रद्धालुजनों ने इस अलख के औलिया की अमृतवाणी का लाभ लिया ।

सत्संग समारोह के तीसरे दिन विद्यार्थियों के लिये आयोजित विशेष सत्र में कानफाडू संगीत की दीवानी युवा पीढ़ी के हजारों बच्चों को **श्रीराम जय राम जय जय राम...** एवं **हरि हरि ओम्** के कीर्तन से मस्ती में सराबोर करते हुए तथा उद्यम, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रम के सहारे जीवन सफल बनाने की प्रेरणा देते हुए पूज्यश्री ने स्वामी विवेकानंद, महान् गणितज्ञ रामानुजम्, नेपोलियन बोनापार्ट, समर्थ गुरु रामदास, महाकवि कालिदास आदि के प्रेरक प्रसंगों द्वारा सफल जीवन का मूल मंत्र समझाया ।

प्राप्त समाचारों के अनुसार इन सत्संग के दिनों में सरकारी कार्यालयों में उपस्थिति नगण्य थी। दुकानें दोपहर तक या तो बंद पड़ी रहती थीं या ग्राहकों का बेसब्री से इंतजार किया जाता था । दिनांक : १७ नवम्बर शाम को पूज्यश्री अमृतसर को रवाना हुए ।

अमृतसर : दिनांक : १९ से २४ नवम्बर तक आयोजित सत्संग समारोह के प्रथम दिन शिवालय से सत्संग स्थल रामबाग तक पूज्य बापूजी को एक विशेष रथ में बिठाकर भव्य शोभायात्रा निकाली गयी जिसमें आगे-आगे चल रहे बैण्डबाजेवालों की भगवन्नामधुन व रथ के आगे-पीछे चल रहे हजारों श्रद्धालुजनों की हरिकीर्तन में तन्मयता एवं पूज्यश्री के मुखारविन्द पर झलकते सौम्य भाव से एक मनमोहक दृश्य उपस्थित हो गया था । *पंजाब के राज्यपाल रिटायर्ड लेफ्टनेन्ट जनरल श्री बी. के. एन. छिब्बर पूज्यश्री की अमृतवाणी के रसास्वादन के लिए पूज्य बापूजी के सत्संग पांडाल में पधारने से पूर्व ही श्रोताओं के बीच बैठ गये थे ।* पूज्यश्री पांडाल में पधारे तब राज्यपालश्री ने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया ।

तत्पश्चात् पंजाब राज्यमंत्री खुशहाल बहल, विश्व हिन्दू परिषद प्रदेश प्रमुख, वरिष्ठ अधिकारियों तथा कई धार्मिक कमेटियों व व्यापारिक संगठनों के प्रतिनिधियों ने माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया ।

सत्संग श्रवण के उपरांत राज्यपालश्री ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा : *''पूज्य बापूजी महाज्ञानी हैं... सब कुछ समझते हैं... सब कुछ जानते हैं ।''* राज्यपालश्री ने आगे कहा : *''मैं जितने समय यहाँ सत्संग में बैठा, मेरे दिमाग में अनेक विचार आये और सभी सवालों का जवाब पूज्य बापूजी के सत्संग में ही मिल गया ।''* उन्होंने कहा : *''आज का दिन पंजाब व अमृतसर के भाई-बहनों के लिये शुभ दिन है, क्योंकि पू. बापूजी हमारे बीच हैं ।''*

दिनांक : २२ नवम्बर को सुबह के सत्र में शिरोमणि अकाली दल के अध्यक्ष श्री प्रकाशसिंह बादल, पंजाब भा. ज. पा. के अध्यक्ष श्री बलरामदास टंडन, उपाध्यक्ष श्री सतपाल महाजन, राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के अध्यक्ष श्री बलदेवराज चावला, हिमाचल प्रदेश के पूर्व वनमंत्री हरबंशलाल राणा, भा. ज. पा. विधायक लक्ष्मीकांत चावला सत्संग में उपस्थित हुए व माल्यार्पण कर पूज्यश्री का स्वागत किया ।

दिनांक : २३ नवम्बर को विद्यार्थियों को समर्पित विशेष सत्र में ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्य बापूजी ने देश के भावी कर्णधारों को चाय, कॉफी, पान-मसाले, शराब, तम्बाकू आदि घातक दुर्व्यसनों से सावधान रहने के लिये प्रेरित किया तथा बुद्धिबल, शारीरिक बल, मानसिक

शीघ्र ही बाहर निकल जाते हैं ।

अजवायन एक कृमिनाशक अत्यन्त उत्तम औषधि है । इससे पेट के कीड़े दूर होकर बच्चों का सोते समय दाँत किटकिटाना बन्द हो जाता है । तीन दिन से एक सप्ताह तक आवश्यकतानुसार सेवन करें ।

जिन व्यक्तियों को रात में बहुमूत्र की शिकायत हो उन्हें भी इससे लाभ होता है । कृमिजन्य सभी विकार दूर होने के साथ-साथ अजीर्ण आदि रोग भी दूर हो जाते हैं ।

नजला-जुकाम : रात के समय नित्य सरसों का तेल या गाय के घी को गुनगुना गर्म करके नाक द्वारा एक-दो बूँद लेने से नजला-जुकाम नहीं होता है । मस्तिष्क स्वस्थ व सबल रहता है । नाक के रोग नहीं होते । चार-पाँच तुलसी के पत्ते व दो-तीन काली मिर्च नित्य प्रात: खाने से जुकाम व बुखार नहीं होता है ।

होंठों का फटना : नाभि में नित्य प्रात: सरसों का तेल लगाने से होंठ नहीं फटते अपितु फटे हुए होंठ मुलायम व सुन्दर हो जाते हैं । साथ ही नेत्रों की खुजली व खुश्की दूर हो जाती है ।

दाँतों की मजबूती के लिये : मूत्रत्याग के समय ऊपर नीचे के दाँतों को एक दूसरे से दबाकर बैठें तो दाँतों की मजबूती बढ़ती है, दाँत जल्दी नहीं गिरते, लकवा (पक्षघात) होने का भी डर नहीं रहता व दाँतों की सभी बीमारियों से बचाव होता है । नित्य प्रात: नीम की दातून करने से दाँत मजबूत रहते हैं । मुखरोगों से बचाव होता है ।

मुख में कुछ देर सरसों का तेल रखकर कुल्ला करने से जबड़ा बलिष्ठ होता है । आवाज ऊँची व गम्भीर हो जाती है । चेहरा पुष्ट होता है । इस प्रयोग से होंठ नहीं फटते, कंठ नहीं सूखता एवं दाँतों की जड़ें मजबूत होती हैं ।

विशेष : ऋतु अनुकूल तथा पाचनशक्ति के अनुसार ही खाना चाहिए । संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए खान-पान में संयम नीरोग रहने की चाबी है ।

❀

पूज्यश्री का प्रसाद संजीवनी है

ऐसा कहा जाता है कि जो काम दवा से नहीं होता वह दुआ से हो जाया करता है । लेकिन मेरा अनुभव तो यह कहता है कि दुआ के साथ-साथ पूज्यश्री के हाथों से यदि प्रसाद मिल जाए तो हमारी दुआ भी स्वीकार हो जाती है ।

मैं विगत २३ वर्षों से दमा का मरीज था और गत १० वर्षों से यूरिक एसिड और एक वर्ष से ब्लड कॉलस्ट्राल की बीमारी से पीड़ित था । यानि मेरा शरीर बीमारियों का घर था । मैं अपनी इन बीमारियों से बूरी तरह त्रस्त था । ऐसे में मई '९४ में हृषिकेश में मुझे पूज्यश्री के दर्शनलाभ का सुअवसर मिला । पूज्यश्री ने मुझे प्रसादस्वरूप टाफियाँ दीं और उनको लेते ही मैं दो प्रमुख बीमारियों- अस्थमा एवं यूरिक एसिड के चुंगल से मुक्त हो गया । मानो मुझे प्रसाद में संजीवनी मिल गयी । फिर नवम्बर '९५ में मुझे ब्लड कॉलस्ट्राल ने आ घेरा जो कि ३०० मि. ग्रा. (नार्मल वेल्यू) से भी अधिक था ।

मुझे पुन: बापूजी के सान्निध्य का लाभ फरवरी '९६ में मिला । इस मर्तबा तो बापूजी के दर्शन से ही मेरी बीमारी गायब हो गयी । सचमुच मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे पूज्यश्री का सान्निध्य-प्रसाद मिला और आज मैं स्वस्थ हूँ ! बस, रह-रहकर मेरे मन में यही विचार आता है कि जब बापूजी के दर्शन का इतना अनुपम फल है तो यदि उनके द्वारा मंत्रदीक्षा मिल जाए तो फिर कहना ही क्या... ?

- हरिश छाबरिया

राधाकिशन वाटिका, २१/५४६, सिविल लाईन्स, रायपुर ।

हृदयरोगों में अत्यन्त प्रभावशाली योग

अर्जुन की ताजा छाल को छाया में सुखाकर चूर्ण बनाकर रख लें। २०० ग्राम दूध में २०० ग्राम ही पानी मिलाकर हल्की आग पर रखें व उपरोक्त तीन ग्राम अर्जुन छाल का चूर्ण मिलाकर उबालें। जब उबलते-उबलते द्रव्य आधा रह जाय तब उतार लें। थोड़ा ठंडा होने पर छानकर रोगी को पिलाने से सम्पूर्ण हृदयरोग नष्ट होते हैं व हार्ट अटेक (दिल का दौरा) से बचाव होता है।

सेवन विधि : रोज एक बार उपरोक्त दवा प्रातः खाली पेट लें व देढ़-दो घंटे तक कुछ न लें। एक मास नित्य प्रातः लेते रहने से दिल का दौरा पड़ने की सम्भावना नहीं रहती है।

पथ्यापथ्य : हृदयरोगों में अंगूर व नींबू का रस, गाय का दूध, जौं का पानी, कच्चा प्याज, आँवला, सेव आदि का सेवन हितकारी है। गरिष्ठ पदार्थों के सेवन से बचें। धूम्रपान न करें। मोटापा, मधुमेह व उच्च रक्तचाप आदि को नियंत्रित रखने का प्रयास करें। हृदय की अधिक धड़कने व नाड़ी की गति बहुत कमजोर हो जाने पर अर्जुन की छाल जीभ पर रखने मात्र से तुरन्त शक्ति प्रतीत होने लगती है।

अपानवायु मुद्रा

अंगूठे के पासवाली पहली अंगुली को अंगूठे की जड़ में लगाकर अंगूठे के अग्रभाग को बीच की दोनों अंगुलियों के अगले सिरे से लगा दें। सबसे छोटी अंगुली (कनिष्ठिका) को अलग रखें। इस स्थिति का नाम अपानवायु मुद्रा है। यदि किसीको हार्ट अटैक या हृदयरोग एकाएक आरम्भ हो जाय तो इस मुद्रा को अविलम्ब करने से हार्ट अटैक को तत्काल रोका जा सकता है।

अपानवायु मुद्रा

हृदयरोगों में जैसे कि हृदय की घबराहट, हृदय की तेज या मन्द गति, हृदय का धीरे-धीरे बैठ जाना आदि में कुछ ही क्षणों में लाभ होता है।

पेट की गैस, हृदय तथा पेट की बेचैनी और सारे शरीर की बेचैनी इस मुद्रा के अभ्यास से दूर हो जाती है। आवश्यकतानुसार प्रतिदिन २० से ३० मिनट तक इसका अभ्यास किया जा सकता है।

रोग एवं निदान

पेट में कीड़े : तीन साल से पाँच साल के बच्चों को आधा ग्राम अजवायन का चूर्ण व समभाग गुड़ में गोली बनाकर दिन में तीन बार खिलाने से सभी प्रकार के पेट के कीड़े नष्ट होते हैं।

सुबह उठते ही कुल्ला आदि करके बच्चे दस ग्राम व बड़े २५ ग्राम गुड़ खाकर दस-पन्द्रह मिनट के बाद बच्चे आधा ग्राम व बड़े एक से दो ग्राम अजवायन का चूर्ण बासी पानी के साथ खायें। इससे आँतों में मौजूद सभी प्रकार के कृमि नष्ट होकर मल के साथ

कि वे क्या कर रहे हैं ? पाखंड हटाने का झंडा लेकर आगे बढ़नेवाले कहते हैं कि 'हम धार्मिक हैं... हम धर्म की जय कर रहे हैं और वे लोग विद्रोह कर रहे हैं ।' जब कबीर आये तब पंडों ने कहा : 'हम धर्म की जय कर रहे हैं ।' जब सुकरात आये तब राजा तथा अन्य लोगों ने कहा : 'हम धर्म की जय कर रहे हैं ।' नानक आये तब विरोधियों ने बलवा पुकार लिया कि : 'नानक को शहर से निकाला जाये क्योंकि वह पाखंड चला रहा है । धर्म की जय तो हम कर रहे हैं ।'

आदिकाल से ही ऐसा होता चला आया है ।

लेकिन चाहे कैसी भी मुसीबतें आयीं, कितनी ही विपरीत परिस्थितियाँ आयीं किन्तु जो सच्चे भक्त थे, श्रद्धालु थे, उन लोगों ने सच्चे संतों की शरण नहीं छोड़ी । कबीरज़ी के साथ सलुका-मलुका, नानकजी के साथ बाला-मरदाना ऐसे श्रद्धालु शिष्य थे, जिनके नाम इतिहास में अमर हो गये ।

धन्य हैं वे शिष्य, जो अलख पुरुष की आरसी स्वरूप ब्रह्मवेत्ता संतों को श्रद्धा-भक्ति से देखते हैं और उनसे आखिरी तक निभा पाते हैं । जो निंदा या कुप्रचार का शिकार बनकर शांति का घात नहीं करते, वे बड़भागी हैं । इन्हीं को यह फलता है :

अलख पुरुष की आरसी साधु का ही देह ।
लखा जो चाहे अलख को इन्हीं में तू लख लेह ॥

❀

(पृष्ठ १० का शेष)

फुरती है तो उसे बुद्धि कहते हैं । वह परमात्मा के ज्यादा करीब है । परमात्मा के सबसे निकट हृदय होता है, फिर बुद्धि होती है, बाद में मन, इन्द्रियाँ और जगत् होता है । संसार का सब कुछ त्याग करके भी जिसने परमात्मभाव बना लिया उसने लाभ का सौदा किया क्योंकि संसार की चीजें साथ में नहीं चलेंगी । साथ में चलेगा परमात्मभाव, साथ में चलेगा स्वभाव । रूपये, मकान बिगड़े तो बिगड़े लेकिन अपना स्वभाव नहीं बिगड़ना चाहिए और **'स्व'** माना **'आत्मा'** अत: **'आत्मा'** का भाव **'स्वभाव'** नहीं बिगड़ना चाहिए ।

पहले योग्य बनें फिर कामना करें

ऐसे गुरु को खोज निकालना जो अपने शिष्य की भलाई के लिये सच्चाईपूर्वक प्रयत्नशील हों, इस संसार में बड़ा ही दुष्कर कार्य है, परन्तु ऐसे शिष्य को ढूँढ निकालना भी, जो सच्चाईपूर्वक गुरु के उपदेश के अनुसार चले, अत्यधिक कठिन कार्य है ।

आज शिष्य ऐसे उद्धत, अवज्ञाकारी तथा स्वेच्छाचारी हैं कि कोई भी आध्यात्मिक मार्ग का महान् व्यक्ति उन्हें प्रशिक्षित करना नहीं चाहता । वे शिष्य अपने गुरु को ही बहुत कष्ट पहुँचाते हैं । वे गुरु के आदेशों का तो पालन नहीं करते अपितु कुछ ही दिनों में स्वयं ही गुरु बन जाते हैं अथवा गुरु का अन्न खाकर गुरु से ही गद्दारी करते हैं ।

आत्म-साक्षात्कारी महापुरुष दुर्लभ तो नहीं हैं परन्तु सांसारिक बुद्धिवाले व्यक्ति उन्हें सुगमता से पहचान नहीं सकते । केवल कुछ ही व्यक्ति जो कि शुद्ध हैं, सद्गुणों से सम्पन्न हैं, वे ही आत्म-साक्षात्कारी महापुरुषों को जान पाते हैं । वे ही उनकी संगति से लाभ उठा पाते हैं ।

यदि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण भी आपके साथ रहें तो वे भी आपके लिये कुछ नहीं कर सकते जब तक आप स्वयं उन्हें पाने के अधिकारी न हों ।

ईश्वर तथा संसार दोनों की एक साथ सेवा करना असम्भव है । जैसे आप प्रकाश तथा अन्धकार दोनों को एक ही समय में नहीं रख सकते ऐसे ही यदि आप आध्यात्मिक सुख चाहते हैं तो आपको विषय-सुखों का परित्याग करना होगा ।

आध्यात्मिक मार्ग बहुत-सी बाधाओं से भरा हुआ है । अत: वे गुरु जिन्होंने स्वयं उस मार्ग का अनुगमन किया है, साधकों का पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं तथा उनके मार्ग से सभी प्रकार की कठिनाइयों एवं बाधाओं को दूर कर सकते हैं । ऐसे गुरु से प्राप्त मंत्र में रहस्यमयी शक्ति होती है ।

- स्वामी शिवानंद सरस्वती